तीर्थंकर महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में प्रकाशित

आत्मधर्म

भगवान महावीर निर्वाण रजत-शती विशेषांक
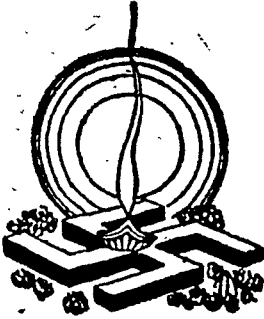
आतम को हित है सुख सों,
सुख आकुलता बिन कहिए।

परामर्शक
भगतराम जैन

सम्पादक
विनोद कुमार जैन

प्रबन्धक सम्पादक
नलिनी अग्रवाल

कला पक्ष
सुधीर

वर्ष १० : अंक ११-१२
नवम्बर-दिसम्बर १९७४
वार्षिक शुल्क : ८ रुपये
एक प्रति : ७५ पैसे
प्रस्तुत अंक : ५ रुपये
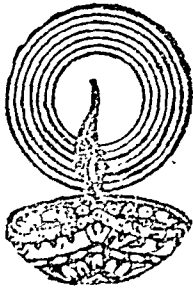
आगम पथ

प्रमुख नैतिक विचार मासिक

अनुक्रमणिका

अनेकान्तवाद या अहिंसावाद

भारत में जितने भी धार्मिक सम्प्रदाय विकसित हुये उनमें से अहिंसावाद को उतना महत्त्व किसी ने भी नही दिया है। जितना जैन धर्म ने दिया है। बौद्ध धर्म में फिर भ. अहिंसा की एक सीमा है कि स्वयं किसी जीव का वध न करो, किंतु जैनों की अहिंसा निस्सीम है। स्वयं हिंसा करना, दूसरों से हिंसा करवाना या अन्य किसी भी तरह से हिंसा में योग देना, जैन धर्म में सब की मनाही है। और विशेषता यह है कि जैन दर्शन केवल शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत वह बौद्धिक अहिंसा को भी अनिवार्य बताता है, यह बौद्धिक अहिंसा ही जैन दर्शन का अनेकांतवाद है।

समन्वय, सह- अस्तित्व और सहिष्णुता ये एक ही तत्त्व के अनेक नाम हैं जिनको जैन दर्शन में शारीरिक धरातल पर अहिंसा और मानसिक धरातल पर अनेकांत कहा गया है।

—'दिनकर'

May Lord Mahavir of unparalleled glories always remain as my beacon ligh.

शुभ सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर आगम पथ मासिक पत्रिका एक विशेपांक प्रकाशित करने जा रही है। मैं इस विशेपांक की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूं।

—ब० दा० जत्ती

उपराष्ट्रपति भारत
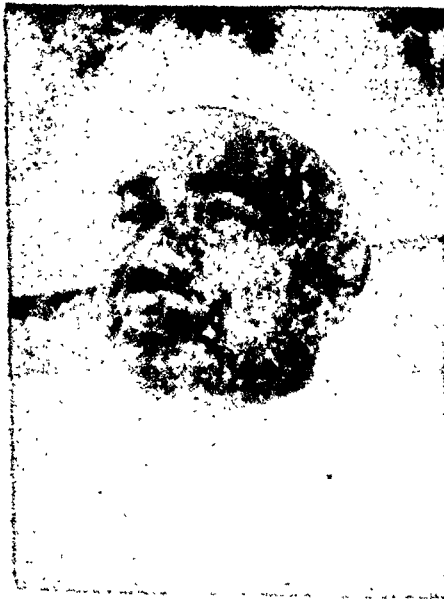
हिन्दी मासिक पत्रिका आगम पथ द्वारा महावीर जी के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर एक विशेपांक प्रकाशित किया जा रहा है, यह ज्ञात हुआ।

महावीर जी जाति-पांति विहीन समानता पर आधारित समाज की रचना के लिये प्रयत्नशील रहे। उनका उपदेश जीव मात्र के लिये था।

आशा है विशेपांक में उनकी जीवनी, उपदेशों, आदर्शों एवम् सिद्धान्तों का समुचित दिग्दर्शन होगा।

विशेपांक उपयोगी सिद्ध हो।

जगजीवन राम

कृषि मन्त्री, भारत

भगवान महावीन हमारे देश की उन दिव्य विभूतियों में थे जिन्होंने अपने उपदेशों से सारी मानवता को आलोकित किया है। भगवान महावीर ने चरित्र-निर्माण, सदाचरण और अहिंसा पर बल दिया था। उनके अमृत उपदेशों से भारत के ही नहीं अपितु सारे संसार के कोटि-कोटि लोगों को नया मार्ग और नया ज्ञान मिला। आज के युग में जबकि मानवता संघर्ष और तनाव के बीच से गुजर रही है उनके उपदेशों के द्वारा ही इनसे पार पाया जा सकता है।

भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर आपने अपनी पत्रिका का जो विशेषाँक निकालने का निश्चय किया है वह सराहनीय है। मैं आशा करता हूं कि इसके द्वारा अधिकाधिक लोगों तक भगवान महावीर के आमृत सन्देश पहुँच सकेंगे।

मैं विशेपांक की सफलता की कामना करता हूं।

—राधा रमण

मुख्य कार्यकारी पार्षद दिल्ली

भगवान महावीर के तृप्तिका आत्मानुशासन तया अहिंसा के अध्यात्मिक सन्देश का अनुगमन कर देशवासियों ने तत्कालीन अराजकताँ व पूर्ण हिंसक प्रवृत्तियों पर विजय श्री प्राप्त की थी। आज भी हमारे देशवासी विशेषत: हमारा युवा वर्ग भगवान महावीर के दिव्य सन्देश से प्रेरणा ग्रहण कर वर्तमान विषमताओं को समाप्त करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

विशेषांक मानव-समाज को आपेक्षित चिन्तन सामग्री प्रदान करने में सफल होगा। शुभ कामनाओं सहित।

—केदारनाथ साहनी महापौरर, दिल्ली

आगमपथ मासिक पत्र का भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के अवसर विशेषाँक प्रगट करने का जो विचार है वह सराहनीय है। मुझे आशा है इस पत्र के माध्यम से वीर वाणी का पूरी तरह से प्रचार होगा और उस प्रचार के सहारे आम जनता का और विशेषत: जैन धर्मावलम्बियों का चरित्र ऊंचा होगा।

विशेषांक की सफलता के लिये शुभकामनायें भेजता हूँ।

—महावीर प्रसादजैन

अध्यक्ष—अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद्

मेरी कलम से

तीर्थंकर महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर आगम पथ परिवार की ओर से एक साधारण पुष्प पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इस महान् अवसर पर हम अपनी तथा अपने पाठकों की ओर से भगवान महावीर को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

भगवान महावीर आज से २५७२ वर्ष पूर्व अनेक दुःखों और कुठाओं से ग्रस्त मानवता को प्रेम, दया, अहिंसा और सत्य का संदेश देने आये थे। भगवान् ने एक ऐसा दर्शन, एक नयी विचारधारा जगत को दी जिससे मानव का ही नहीं प्राणी मात्र का कल्याण हो सकता है। इसलिये आज इस बात की महती आवश्यकता कि आज के अव्यवस्थित, घुटन भरे समाज में नयी चेतना के लाने के लिये महावीर के उपदेशों को पुर्नस्थापित किया जाये।

हम मानते हैं कि भगवान महावीर के उपदेश जितने उस युग में आवश्यक थे उतने आज भी है। भगवान महावीर के समय में तत्कालीन परिस्थितियां भी आज जैसी ही थी अथवा समस्यायें तो थी लेकिन थोड़ा भिन्न। महावीर केवल ज्ञानी थे उन्होंने भूत, वर्तमान और भविष्य देखा था और उसी के आधार पर समस्याओं का समाधान किया। अतः महावीर के उपदेश, शिक्षायें प्रत्येक स्थान काल और समय के लिये है किसी विशेष परिस्थिति के लिए नहीं।

भगवान महावीर ने विश्व को एक नई चिंतन दिशा प्रदान की। उन्होंने अनेकांतवाद की व्याख्या कर 'आग्रह- अनाग्रह' के झगड़े को सदा के लिए समाप्त कर दिया। 'ही' समस्ता झगड़ों की जड़ है। अतः 'ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग किया जाए जो झगड़े की कोई गुंजाईश नहीं रहेगी।

आज की विषम परिस्थितियों में केवल भगवान महावीर का धर्म ही एक माह दिखा सकता है। महावीर ने कहा मनुष्य जन्म, गौत्र कुल से महान नहीं बनता, कर्म से महान बनता है। इस प्रकार समाज में फैली ऊंच-नीच की कुरीति को उन्होंने दूर किया। आज जो हम समन्वय, समाजवाद-सह-अस्सित्व, गरीबी हटाओ आदि का नारा लगाते है अगर थोड़ा विषलेषण करें तो पता चलेगा कि इनका हल महावीर ने हमें २५०० वर्ष पूर्व ही दे दिया था।

अतः आज आवश्यकता है दीपावली के शुभ अवसर पर ज्ञान के दीपक को अन्तर्गत में प्रज्जवलित करने की।

विनोद कुमार जैन

डायरी का एक पन्ना

—नलिनी-अग्रवाल

१३ नवम्बर से २० नवम्बर तक समस्त देश ने भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव को मनाया। बड़े जोर शोर से जलूस निकले, जलसे हुये, नाटक और ड्रामे हुये। और सब कुछ समाप्त सा हो गया।

मैंने एक बार पहले भी लिखा था कि मात्र जलसे, जलूस अथवा नाटक, कवि सम्मेलन आदि करने से कोई ठोस कार्य हो पाता है ! आज कुछ लोगों की दलील है कि कम से कम इनसे महावीर के नाम का प्रचार तो हुआ ? मैं कहती हूं कि आज महावीर को प्रचार की जरूरत नहीं है। महावीर को प्रचार की जरूरत होती तो वे आज से २५०० वर्ष पहले ही बौद्द धर्म की भांति अपने धर्म को फैला गये होते। महावीर को प्रचार की न जब जरूरत थी, न अब है। अब जरूरत इस बात की है कि उनके बताये हुये मार्ग का अनुसरण करें, अपने जीवन में जिन धर्म का पालन करें। १६ नवम्बर के जलूस में एक व्यक्ति के हाथ में पट था उसमें लिखा था—'अपने पड़ौसी से भी प्रेम का व्यवहार करो।' कैसी विडम्बना है हम सब की कि हम अब यह बातें भी बोर्ड पर लिख रहे हैं और रात-दिन अपने पड़ोसियों से लड़ रहे हैं।

भगवान महावीर की हमारे लिये जो सबसे बड़ी देन है वह है अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत। महावीर ने सिखलाया कि समस्त पापों की जड़ परिग्रह है। यह बात महावीर ने २५०० वर्ष पूर्व कही थी। और आज... आज महावीर के अनुयायी सबसे अधिक परिग्रह के पीछे पागल हो रहे हैं। कम से कम जो व्यक्ति निर्वाण समितियों के पदाधिकारी वे तो महावीर के उपदेशों का पालन करने वाले होने चाहियें। याद रखें ! करोड़ों रुपये खर्च करके भी आप महावीर की निर्वाण शताब्दी सफल नहीं कर सकते, जब तक के तीर्थंकर महावीर नयन पथ से आपके हृदय में न उतरें। आज विश्व को उनके सिद्दांतों के पालन करने की आवश्यकता है, व्यवहारिक आडम्बर की नहीं।

आज भी जैन समाज और अन्य समाजों को भी चेत जाना चाहिये महापुरुषों की जयन्तियां आदि मनाना तभी सार्थक सिद्द होगा जब कि हम उनके उपदेशों का पालन करें।

विश्व के सभी प्राणियों के लिये परिग्रह के समान कोई
दूसरा बन्धन नहीं है। —भगवान महावीर

भगवान महावीर

की

निर्वाण रजत - शती

सफल हो !

□ पं० आशाधर सूरि

महावीर वन्दना
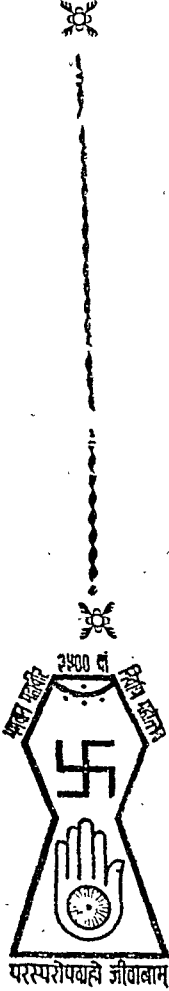
सन्मति-जिन पं सरसिज-वदनं
संजनिताखिल — कर्मक—मथनं
पद्म सरोवर मध्य गजेन्द्र
पावापुरि महावीर जिनेन्द्र ।
वीर भवोदधि- पारोन्तारं ।
मुक्ति श्रीवधू-नगर विहारं
द्विव्दिशकं तीर्थं पवित्रं
जन्माभिषकृत निर्मलगात्रं ।

वर्धमान - नामारव्य - विशालं
मानमान - लक्षणदशतालं
शत्रु विमथन विकट भट वीरं
इष्टैश्वर्य धुरी कृत दूरं ।

कुण्डल पुरि सिद्धार्थ भूपाल—
तत्पत्नी प्रियकारिणी वालं
तत्कुलनलिन • विकाशित हंस
घातपुरोघातिक विध्वं स ।
ज्ञान दिवाकर—लोकालोकम्
निर्जित कर्मा—रातिविशोकं
बालत्वे संयम सुपालितं,
मोह महानल मथन विनितं ।

—

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

तीर्थंकर महावीर की जीवन झांकी

- इस युग के २४ तीर्थंकरों में अन्तिम तीर्थंकर
- गर्भावतरण : आषाढ़ सुदी छह
- जन्मदिवस : चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सन् ५९९ ई० पूर्व
- जन्मस्थली : वैशाली गणतन्त्र का कुण्डपुर ग्राम
- पिता-माता : महाराजा सिद्धार्थ—महारानी त्रिशला (प्रियकारिणी)
- वंश गोत्र जाति आदि : नाथ वंश, काश्यप गोत्र, इक्ष्वाकु कुल क्षत्रिय, लिच्छवि जाति,
- कुमारकाल : २८ वर्ष ७ माह १२ दिन
- शरीर परिमाप : ७ हाथ
- दीक्षा तिथि : अगहन मंगसिर कृष्णा दशमी
- साधना काल : १२ वर्ष ५ माह १५ दिन
- केवल ज्ञान प्राप्ति : वैसाख सुदी दशमी के दिन तीसरे पहर विजय मुहुर्त में विहार के जम्मुक ग्राम के निकट ऋजुकूला नदी के तट पर केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

प्रथम दिव्य देशना : केवल ज्ञान प्राप्ति के ६५ दिन पश्चात् सावन बदी १ के उषाकाल में राजगृही के विपुलाचलपर्वत पर प्राणी मात्र के लिये उपदेश।

- विहार एवं प्रचार काल : अंग, वंग कलिंग, वास, कौशल, पांचाल, गुर्जर, मगध, कुरु, अवन्ती, शूरसेन आदि प्रदेशों में २९ वर्ष ५ माह २० दिन।
- कुल आयु : ७१ वर्ष ३ माह २५ दिन १२ घण्टे
- चिन्ह मूर्ति : सिंह
- निर्वाण काल : पावापुरी में पद्म सरोवर तट पर कार्तिक कृष्णा अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में निर्वाण हुआ।

★★

साधारणतया मनुष्य मरने की चिन्ता बहुत करता है। जब भी मरने का नाम लेता है या यह शब्द सुनता है उसे कम्पन हो जाता है। जगत के मरने वाले प्राणी यही तो हर समय कहते हैं कि ऐसी ही स्थिति सब प्राणियों की होने वाली है। अतः इस जीवन में यदि विशिष्ट व शुभ कार्य न किया या कर्मों को नष्ट नहीं किया तो दुःख से छूटकारा नहीं हो सकेगा। किन्तु खेद हैं कि भगवान के अमर सन्देश के पश्चात् भी मनुष्य जानते हुए भी अंजान हो रहा है, अपनी आत्मा को निर्मल न बनाकर हम कषायों में उलझाये रखना पसंद कर रहे हैं।...

भगवान महावीर का पावन सन्देश

भारत सन्तों का देश है। समय समय पर अनेक सन्त महापुरुष यहाँ उत्पन्न हुए है और उन्होंने दीर्घकालनी साधना के बाद जो आत्मोत्थान एवं विश्व कल्याण के मार्ग का अनुभव प्राप्त किया। उसे जंन २ तक पहुँचाने के लिए उन्होंने काफी श्रम किया और उन्हीं की मंगलवाणी ने भारतीय जनता को नई दिशा दी जिससे मानव भोग से हटकर त्याग की ओर उन्मुख हुआ। सभी जीव यह अनुभव करते हैं कि पौद्गालिक पदार्थों में जो सुख की कल्पना है वह अन्ततो-गत्वा दुःख का ही कारण है क्योंकि संयोग के पीछे वियोग लगा हुआ है। जिस वस्तु को पाकर हम सुख का अनुभव करते हैं, वह सर्वदा उसी रूप में रहने वाली नहीं है और जव उसका रूप बदल जाता है या वह

हमसे दूर हो जाती है तो हमें उसका वियोग सताता है । इस तरह मनुष्य की ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसकी रुचि और स्वभाव में परिवर्तन होता जाता है। इसलिए बाल्यकाल में जिन चीजों से आनन्द मिलता था, वह यौवनकाल में आनन्दहीन हो जाती है और वृद्धावस्था में स्थिति उससे भी भिन्न हो जाती है। अर्थात प्रकृति हमें निरन्तर यह संदेश देती है कि परिवर्तनशील जगत में कोई चीज स्थाई नहीं है और वैसी अवस्था में महापुरुषों का गम्भीर अनुभव—'त्याग में सुख है, भोग में नहीं,' आत्मा को शांति प्रदान करने में सहायक होता है।

भगवान महावीर का भी यही अमर संदेश है जीवन के साथ मरण का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मनुष्य चाहे भ्रमवश मरने को दूर भले ही मान बैठे मगर ज्ञानियों की दृष्टि में तो प्रतिपल आयुष्य घटता जा रहा है और मनुष्य मरण के नजदीक पहुँच रहा है। इसीलिए भगवान ने कहा था कि क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। इस संदेश के द्वारा मानव को हर समय सचेत रहना चाहिए नहीं तो पुनः चौरासी के चक्कर मौजूद है. मानव भव (जन्म) बड़ी मुश्किल से मिला है। अतः ऐसा जीवन जीना चाहिए कि जिससे फिर किसी योनि, जाति या गति में जन्म ही ग्रहण न करना पड़े। क्योंकि यह शाश्वत सत्य है कि जन्म लेनेवाला मरता अवश्य है किन्तु परमपदवी प्राप्ति के बाद मानव जन्म जरा व्याधि आदि से मुक्त हो जाता है।

साधारणतया मनुष्य मरने की चिंता बहुत करता है। जब भी मरने का नाम लेता है या यह शब्द सुनता है उसे कम्पन हो जाता है। जगत के मरने वाले प्राणी यही तो हर समय कहते हैं कि ऐसी ही स्थिति सब प्राणियों की होनी वाली है। अतः इस जीवन में यदि विशिष्ट व शुभ कार्य न किया या कर्मों को नष्ट नहीं किया तो दुःख से छुटकारा नहीं हो सकेगा. किन्तु खेद है कि भगवान के अमर सन्देश के पश्चात भी मनुष्य जानते हुए भी अनजान हो रहा है। हमारी आत्मा को निर्मल न बनाकर हम कषायों में उलझाये रखना पसंद कर रहे हैं।

यह संसार चार गतियों का समूह है। नरक, तिर्यन्च, मनुष्य व देव ! नरक में जीव पाप कर्मो का भोग वेदन करते रहते है। तिर्यञ्च में भी अज्ञान व मिथ्यात्व छाया रहता है, देव विविध भोगों में आसक्त रहते है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अज्ञान, मिथ्यात्व, विषय-वासना, क्रोधादि कषायों को दूर हटाकर नये

कर्मों के बंध को रोक करते हुए पूर्व कर्मों को क्षयकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। जहां न जन्म है, न मरण है, न दुःख व क्लेश है। सिद्धों -- उन्हें तो केवल आनन्द ही आनन्द की अनुभूति होती है। भगवान् महावीर ने ऐसी ही शाश्वत आनन्ददायिनी ज्ञान स्वरूपा मुक्ति साधना का अधिकारी मनुष्य को ही माना है। वह भी यदि भूल भटक जावे तो पुनः चारों गतियों में भ्रमण करना ही पड़ता है।

जैन तीर्थंकरों के २३ तीर्थंकरों की वाणी तो आज हमें प्राप्त नहीं है, मगर अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की वाणी हमारे पुण्योदय से अधूरी अवश्य प्राप्त है। यदि हम उस पर पुनः २ मनन करें तो अवश्य ही आत्मोत्थान कर सकते हैं। भगवान महावीर ने सबसे बड़ी बात यही कही कि "प्रत्येक प्राणी में सिद्ध, बुद्ध होने की सत्ता विराजमान है। अपना उत्कर्ष व अपकर्ष प्राणी के स्वयं अपने हाथों में ही है। हम ही अपने मित्र एवं शत्रु हैं।" उनकी वाणी हमें वीतराग और कर्मरहित होने का शुभ सन्देश देती है। कर्मों का बन्ध मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और प्रमाद के कारण होता है। जो समय बीत जाता है, वह वापस नहीं आता, कर्मों के फल के भोगे बिना छुटकारा नहीं। इसलिए हमें प्रतिपल सावधान रहने का आवश्यकता पर बल दिया गया है। यदि हम कर्मों को सम्भाव से भोगकर क्षय कर डाले तो अवश्य ही हम मोक्ष के समीप पहुँच जायेंगे। चाहे इस क्षेत्र और काल में पूर्ण रूप से मोक्ष प्राप्त न कर सकें, पर एकावतारी तो बन ही सकते हैं। अर्थात् हम अनन्त भव-भ्रमण के चक्र को घटाकर सीमित कर सकते हैं यहां तक कि यहाँ से मरने के बाद ही महाविदेह आदि क्षेत्र में उत्पन्न होकर मुक्त हो सकते है। इसलिए हमें निराशा होने की आवश्यकता नहीं। निरन्तर सत्यकार्य में प्रवृत, असत् कार्य से निर्वत और आत्म-स्वभाव में स्थित रहने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रमाद के कारण हम विषय कषायों के चक्कर में हमारे जीवन के अमूल्य क्षण बरबाद कर देते हैं। इसीलिए भगवान ने अपने प्रथम प्रधान शिष्य गौतम को सम्बोधन करते हुए 'उत्तराध्ययन सूत्र' में यह महान् सन्देश दिया कि 'समय मात्र भी प्रमाद न करें।' गौतम के नाम का यह सन्देश मानव मात्र के लिए प्रेरणादायी है। महावीर निर्वाण जयन्ति पर उनकी मंगलमय वाणी को हृदयगम करते हुए अपने जीवन के तारों को झंकृत करना चाहिए। भगवान ने

फरमाया है कि—

(१) जैसे वृक्ष का पत्ता पतझड़, ऋतुकालिक रात्रि समूह में बीत जाने के बाद पीला होकर गिर जाता है, वैसे ही मनुष्यों का जीवन भी आयु के समाप्त होने पर सहसा नष्ट हो जाता है, इसलिए हे! गौतम प्रमाद न कर।

(२) जैसे ओस की बूंद कुशा की नोक पर थोड़ी ही देर तक ही ठहरी रहती है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन भी बहुत अल्प समय का है, शीघ्र ही नाश हो जाने वाला है। इसलिए हे गौतम क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

(३) अनेक प्रकार के विघ्नों से युक्त अत्यन्त अल्पआयु वाले इस मानव जीवन में पूर्व संचित कर्मों की धूल को पूरी तरह झटक दे, इसलिए हे मानव ! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

(४) दीर्घकाल के बाद भी प्राणिय क मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ है क्योंकि कृत कर्मों के विपाक अत्यन्त प्रगाढ़ है। हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद न कर।

(५) मनुष्य जन्म पावेगा तो क्या ? आर्यत्व का मिलना बड़ा कठिन है। बहुत से जीव मनुष्यत्व पाकर भी दस्यु और मलेच्छ जातियों में जन्म लेते है। हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमोद मत कर।

(६) आर्यत्व पाकर भी पांचों इन्द्रियों को परिपूर्ण पाना बड़ा कठिन है। बहुत से आर्य क्षेत्र जन्म लेकर भी विकल इन्द्रियों वाले देखे जाते हैं। पांचों इन्द्रियों के मिलने पर भी उत्तम धर्म का श्रवण प्राप्त करना बड़ा कठिन है। बहुत से लोग पाखण्डी गुरुओं की सेवा किया करते हैं अतः हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

(७) भगवान ने आगे यह भी फरमाया है कि उत्तम धर्म का श्रवण पाकर भी उस पर श्रद्धा का होना बड़ा कठिन है। बहुत से लोग सब कुछ जान बूझ कर भी मिथ्यात्व की उपासना में लगे रहते हैं। हे गौतम ! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर। तेरा शरीर दिन प्रतिदिन जीर्ण होता जा रहा है। सिर के बाल पक कर श्वेत होने लगे हैं। अधिक क्या शरीर और मानसिक बल भी घटता जा रहा है। अतः गौतम। प्रमाद मत कर।

(८) अरुचि, फोड़ा विसूचिका आदि अनेक प्रकार के रोग शरीर में बढ़ते जा रहे हैं इनके कारण तेरा शरीर बिल्कुल क्षीण तथा ध्वस्त हो रहा है अतः प्रमोद मत कर।

(९) जैसे कमल शरतकाल के निर्मल जल को भी नहीं छूता अलग व अलिप्त रहता है उसी प्रकार तू भी संसार से अपनी समस्त आसक्तियों को दूर कर सब प्रकार के स्नेह बन्धनों से रहित हो जा। हे गौतम। क्षण मात्र का भी प्रमाद न कर।

भगवान की मंगलमय वाणी के ऊपर चलने से मानव मात्र का 'कल्याण अवश्यम्भावी है।

'एक धर्म हो, एक कर्म हो एक हृदय हो ऐक विचार।
समतल हो साधक का गतिपथ, अन्दर बाहर एक प्रकार ॥'

—उपाध्याय श्री अमर मुनि जी

सन्मति उपदेश बिना दुनिया में शान्ति कठिन है।

☐ आशुकवि श्री कल्याण कुमार 'शशि'

हिंसा, हत्या, लूटपाट की जग में आग लगी है,
दानवता विकराल रूप धारण कर आज जगी है;
मानवता के मधुर नाम पर, जग में महा ठगी है,
विश्व शान्ति के लिए, भयंकर दावानल सुलगी है।

पता नहीं यह रक्तपात की धारा कहाँ रूकेगी।
दुनिया सिर्फ अहिंसा द्वारा सांस चैन की लेगी।।

ऊपर-ऊपर विश्व शान्ति का हर प्रयत्न जारी है,
अन्दर दिल दहलाने वाली, जंगी तैयारी है;
अधिक उलझती दीख रही अब यह गुत्थी प्रतिदिन है,
सन्मति के उपदेश बिना, दुनिया में शान्ति कठिन है।

दिन प्रतिदिन बढ़ती हिंसा मानवता से न झिलेगी।
दुनिया सिर्फ अहिंसा द्वारा सांस चैन की लेगी।।

विश्व प्रेम की रटना दुनियाँ, मुख से सिर्फ रटेगी,
लेकिन बिना अहिंसा के कोई खाई न पटेगी,
बंधी हुई अपहरणवाद की आंखों पर पट्टी है,
मुंह में राम, बगल में ऐटम, धोखे की छुरी है।

यह कागज की नाव, न भव सागर से पार करेगी।
दुनिया सिर्फ अहिंसा द्वारा सांस चैन की लेगी।।

महावीर ने हिंसा को सात्विकता से जोड़ा था,
मानव का सम्बन्ध अहिंसा के पथ पर मोड़ा था;
त्रस्त जगत को आत्मिकता की सुखद स्वाँस आई थी,
दया, अहिंसा की छाया मानव मन पर छाई थी।

वीर दिशा पनपेगी, विपरित दिशा बदलेगी।
दुनिया सिर्फ अहिंसा द्वारा सांस चैन की लेगी।।

भगवान महावीर का सन्देश

मनुष्य दुखी है, क्योंकि रोगी है। मनुष्य दुखी है, क्योंकि निर्धन है। मनुष्य सन्तप्त है, क्योंकि साधन-विहीन है। महावीर ने कहा कि मनुष्य इस लिए दुखी, सन्तप्त और पीड़ित नहीं है, क्योंकि उसके पास साधनों का अभाव है व रोगी है, वरन् इसलिए कि पर पदार्थों में उसकी आसक्ति है। लालसा है......

— डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री

प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के (विद्वान लेखक)

भगवान वीतरागी महावीर ने विश्व के नाम आध्यात्मिक सन्देश दिया था। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों के लिए बताया था कि सत्त्व के विभाजन के कारण प्राणी मात्र दुःख का अनुभव कर रहा है। मनुष्य आज विभक्त हो गया है। उसकी समग्र चेतना आहत एवं अवरुद्ध हो गयी है। चेतना अपनी अखण्ड सत्ता में है। किन्तु मानव अपने (स्व) और पराये (पर) के अनन्त सयोगों में अपनी अनुभूति कर रहा है। 'मैं' चेतना की मूर्छा है, क्योंकि वह आत्म-प्रतीति से हमें दूर हटा देती है। उसकी कोई पृथक् सत्ता नहीं है, इसका हमें कभी अहसास ही नहीं होता। यही कारण है कि हमारी दृष्टि सदा बहिर्मुखी रहती है। हम कभी अन्त-र्मुखी होने का प्रयत्न नहीं करते। अन्तर्मुखी होना चेतना के अस्तित्व का विस्तार है और चेतना के शाश्वत अस्तित्व की प्रतीति होना ही अध्यात्म है।

जीवन एक संयोग है। यह संयोग भौतिक पदार्थों का न होकर सुख-दुःख का, पाप-पुण्य का है। यदि जीवन है तो अच्छी-बुरी वस्तुओं का, प्राणियों का, रंग-रूपों का, शुभ-अशुभ भावों का साहचर्य तथा सम्बन्ध होना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-सापेक्ष है। वस्तु अपने आप में अच्छी और बुरी नहीं है। वह जैसी है, वैसी ही है। किन्तु उसके साथ उपयोगी या अनुपयोगी सम्बन्ध स्थापित होने के कारण वह अच्छी या बुरी हो जाती है। इसी प्रकार से संसार की कोई वस्तु सुन्दर या असुन्दर नहीं है, वरन् उसके प्रति बनने वाले हमारे रुचि-संस्कार ही उसे सुन्दर या कुरूप कहने लगते हैं। जब तक यह सापेक्षमूलक विवेक बुद्धि हमारे व्यवहार जगत में

प्रतिफलित नहीं होती, तब तक आध्यात्मिक जागरण नहीं होता। आध्यात्मिक जागरण होते ही दृष्टि पलट जाती है. आत्मनिरीक्षण की एक नई प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। फिर यह वाहरी लोक अन्तर्जग का ही प्रतिविम्ब लक्षित होने लगता है। वास्तव में आत्मलोक में पहुँचने के लिए मानस की अवचेतन गहराइयों में उतरना होता है, जहाँ मन की अनेक गांठें धीरे-धीरे खुलने लगती हैं। एक-एक ग्रन्थी अनेक आंटों से मिलकर बनी होती है। अचेतन मन के इन आवेगों, आवेशों की अनुभूति कर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि की ग्रन्थियों को शिथिल करते जाना ही आधुनिक भाषा में मनोचिकित्सा कही जाती है। मनुष्य शरीर से उतना अशक्त, रोगी या दुर्बल नहीं होता, जितना कि मन से। शरीर की वीमारी के लिए मनुष्य का मन एक वहुत वड़ा तथा प्रमुख कारण है।

मनुष्य दुखी है, क्योंकि रोगी है। मनुष्य दुखी है, क्योंकि निर्धन है। मनुष्य संतप्त है, क्योंकि साधन-विहीन है। भ० महावीर कहते हैं कि मनुष्य इसलिए दुखी, संतप्त और पीड़ित नहीं है, क्योंकि उसके पास साधनों का अभाव है, वह निर्धन तथा रोगी है, वरन् इसलिए दुखी है कि उन साधनों में उसकी आशक्ति है, साधनों के लिए उसके मन में लालसा है. वह उनमें परिग्रह-वुद्धि रखता है। नहीं तो क्या कारण है कि शरीर मात्र भौतिक साधन का आलम्वन लेने वाले श्रमण एवं निर्ग्रंथ साधु भीतर-वाहर से नग्न होने पर भी सुख-शान्ति का अनुभव करते हैं और भिक्षाजीवी सदा निर्धनता के विलाप में संतप्त देखे जाते हैं। वास्तव में किसी वस्तु में सुख-दुःख नहीं है, वह तो हमारे भीतर में दृष्टानिष्ट संकल्प-विकल्पों में है। आध्यात्मिक साधना का यह विन्दु निन्तान्त वैयक्तिक है और यह मार्ग निवृत्तिमूलक है। यह आत्म-साधना से ही उपलब्ध हो सकता है। सम्भवतः इसी को लक्ष्य कर विश्वकवि स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि महावीर ने भारतवर्ष में उस मुक्ति का सन्देश दिया था जो कि वास्तविक धर्म है; रूढ़ि मात्र नहीं। महावीर की यह निवृत्तिमार्गी परम्परा वास्तव में हमें मुक्ति की ओर ले जाती है, जहां न दुख है, न सुख है; केवल अक्षय, अवाधित, शाश्वत शान्ति तथा अखण्ड अनुभूति की परमानन्दमय सच्चिदानन्द स्थिति है।

भगवान महावीर का दूसरा संदेश समाज के नाम था। वास्तव में यह कोई प्रथम सन्देश से भिन्न नहीं है। इसका मूल भी आध्यात्मिक चेतना है। संसार के छोटे-वड़े असंख्य प्राणी

दु ख से मुक्त होना चाहते हैं; किन्तु करते वही हैं, जिसका परिणाम अनन्तः दुःखदायी होता है। ऐसे प्राणियों को पहले व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति की सत्ता सर्वोच्च है। मनुष्य नर से नारायण बन सकता है किन्तु वही मनुष्य नारायण बन सकता है, जो पहले मानव बन चुका है। केवल मानव के शरीर को पा लेने मात्र से से वह मनुष्य नहीं हो जाता। मनुष्य को अपनी भांति दूसरे को भी समझना चाहिए। जो जीवन हम में है, वही जीवन अन्य प्राणियों में भी है। सभी प्राणियों में एक ही चेतना समान रूप से व्याप्त है। अहिंसा धर्म इस मूल दृष्टि से ही विकसित हुआ है। सभी मत अहिंसा को धर्म मानते हैं। परन्तु जब तक मनुष्य में स्वार्थ बुद्धि, राग द्वेष, की भावना है, तब तक सूक्ष्म से सूक्ष्म हिंसा होती ही रहती है। जीवन का ऐसा कोई भी समय नहीं है, जब मनुष्य हिंसा के भावों में वर्तन नहीं करता है। क्या सोते, क्या जागते, प्रति समय मनुष्य का मन शुभ या अशुभ भावों की क्रिया में निरत रहता है। अतएव सामाजिक धरातल पर मनुष्य को सुखी बनाने के लिए 'आध्यात्मिक साम्यवाद' की स्थापना श्रेयस्कर है। मनुष्य अपने ज्ञान को, वैभव को; सुख-सम्पदाओ को अपने तक सीमित न रख सके, वह सब में

> ...केवल मानव शरीर को पा लेने मात्र से मनुष्य मनुष्य नहीं हो जाता मनुष्य के अपनी भांति दूसरों को भी समझना चाहिये। जो जीवन हम में है वहीं जीवन अन्य प्राणियों में भी है। सभी प्राणियों में एक ही चेतना समान रूप से व्याप्त है। अहिंसा धर्म इस मूल दृष्टि से ही विकसित हुआ है।...

समान वितरण करता रहे। यही साम्यवाद की मूल भावना है। केवल बाहरी सम्पत्ति का नियन्त्रण (सामाजिकरण) कर देने से दुःख से मुक्ति नहीं मिलेगी। मनुष्य को अपनी मनोवृत्तियों का नियन्त्रण स्वयं करना आवश्यक है। मनुष्य सामजिक या प्रशासनिक बन्धनों तथा नियन्त्रणों में अपनी अपनी स्वाभाविक उन्नति नहीं कर सकता। क्योंकि अन्य सभी व्यवस्थाएं थोपी हुई व आरोपित होती हैं। अतः मनुष्य के सम्यक् विकास के लिए अहिंसामूलक समाज-रचना ही कार्यकारी है। श्रमण संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य मात्र ही सब कुछ नहीं है। मनुष्य की भाँति असंख्य प्रकार के प्राणी इस संसार में विद्यमान हैं। उनमें भी चेतना और जीवन है। वे हमारे ही परिवार के सदस्य हैं। उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? उनके सुख-दुःख का ख्याल रखना, अपने ही सुख-दुःख के ध्यान रखने के समान है। इस विचारधारा में से

दूसरों के प्रति प्रेम, सम्मान, करुणा और मैत्री प्रकट होती है।

मैत्री अहिंसा की ही विधायिका शक्ति है। यदि हम दूसरों की सहायता नहीं कर सकते, उनका कुछ बना नहीं सकते, तो हमें क्या अधिकार है कि उनका अहित करने का विचार मन में लाएं? इस मैत्री भावना का विकास सह-अस्तित्व में लक्षित होता है। केवल अपनी अवस्था, जाति और गुण की समानता रखने वालों में ही नहीं, पेड़-पौधों, वनस्पतियों और पानी आदि के प्रति भी हमारे मन में सम्मान की भावना होनी चाहिए। क्योंकि इन सभी में जीवन है। 'मित्ती में सव्वभूदेसु' (सत्त्वेषु मैत्री) प्राणी मात्र से मैत्री होनी चाहिए। तभी हमारे जीवन में सुगन्ध आ सकती है। मनुष्य केवल अस्थि-चर्म का पुतला नहीं है, वरन् वासनाओं तथा संस्कारों का संघात मात्र है। बिना सेवा भावना के मनुष्य में निःस्वार्थ वृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। और जब तक मनुष्य में निःस्वार्थ भावना नहीं आती, वह अपनी क्षुद्र कामनाओं से ऊपर नहीं उठ सकता। ऐसे ही लोगों के लिए भ० महावीर की वाणी है—

जह ते ण पियं दुक्खं तहेव तेसिं पि जाण जीवाणं। भगवती ०७।७

जैसे तुम को दुःख प्रिय नहीं हैं वैसे अन्य जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं हैं।

जो आधि-व्याधि से पीड़ित हैं, निर्धन हैं, इसलिए दुःखी हैं, उनके प्रति वचन हैं:

विज्जावच्चु ण पई कियउ दिण्णु ण ओसहदाणु।
एवहिं वाहिहिं पीडियउ कंदि म होहि अयाणु॥ सा० ध०, १५७

हे अज्ञानी! तुमने न तो सेवा की और न औषध-दान दिया, इसलिए व्याधियों से पीड़ित होकर दुखी क्यों होते हो?

इतना ही नहीं. सेवा से रहित मनुष्य के व्रत-समूह भी नहीं ठहरते—

विज्जावच्चें विरहियउ वयणियरो वि ण ठाइ। सा० ध०, १३६

मनुष्य भले ही साधन-हीनता के कारण कुछ करने में समर्थ हो या नहीं, पर शुभ भाव करने में तो सर्वथा स्वतन्त्र है। इसलिए भ० महावीर का सन्देश है कि मनुष्य को ही नहीं, प्राणी मात्र को निरन्तर शुभ भाव करते रहना चाहिए। जीव के शुभ भाव को पुण्य और अशुभ भाव को पाप कहते हैं। कहा है—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स। पंचास्ति० १३२

जहां भावों में निर्मलता है, वहां व्यवहार में भी शुद्धि आ सकती है और जहाँ आचार-विचार में शुद्धता है, वहां न तो कोई तनाव, संघर्ष या द्वन्द्व होगा और न किसी प्रकार की आकुलता ही। इसलिए जीवन में शान्ति और सुख उपलब्ध करने के लिए भावों को शुद्ध बनाना चाहिए यही भ० महावीर का सन्देश है।

[शंकर ऑयल मिल के सामने,]
नीमच (म० प्र०)

यदि उनके अनुयायी उनके धर्म को विश्व-कल्याणकारी मानते हों तो सहज में ही उसका प्रसार मानव मात्र के कल्याण के लिए करना सहज कर्तव्य हो जाता है। ऐसे श्रेष्ठ, मंगलमय धर्म को केवल कुछ लोगों तक अर्थात् जनियों तक ही सीमित रखना उचित नहीं होगा क्योंकि जैनियों की मान्यता है कि उनका धर्म सर्वोत्कृष्ट है।...

श्री रिषभदास रांका
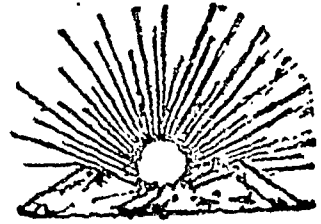
वर्तमान समस्यायें और महावीर का संदेश

भगवान महावीर ने तो जैनियों के प्रथम तीर्थंकर थे और न हीं अन्तिम, उनके पहले अनेक तीर्थंकर हो गए। इसी युग में भगवान महावीर के पहले २३ हुये और २४ वें वे स्वयं थे। भविष्य में भी अनेक तीर्थंकर होंगे ऐसा उन्होंने कहा था। उन्होंने कहा था कि मैं जो धर्म कह रहा हूँ वह नित्य है, ध्रुव है और शाश्वत है। मेरे पहले भी अनेक तीर्थंकरों ने इसे कहा था और भविष्य में भी कहेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि सभी जीव सुख से जीना चाहते हैं, दुःख सभी को अप्रिय है, मरना भी कोई नहीं चाहता इसलिए यदि सुख से रहना चाहते हो तो जिस तरह के व्यवहार की दूसरों से अपेक्षा रखते हो वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ

करो। उन्होंने दुःख का प्रारम्भ दूसरों के साथ परायेपन के व्यवहार को कहा था। उन्होंने सब जीवों के साथ समता के व्यवहार को सुखकर बताया था क्योंकि उन्होंने कहा था कि सभी प्राणियों में आत्मा से परमात्मा, नर से नारायण तथा जीव से शिव बनने की क्षमता है। हर जीव अपने भाग्य का विधाता है। सुख-दुःख का कर्ता है। उनकी समता का आधार गहरा था। उनके ये वचन दीर्घ काल की साधना का परिणाम था। वे पूर्णतया अनुभवपूर्ण थे। इसी कारण उसके पीछे यह आत्मविश्वास था कि मैं जो कह रहा हूँ वह नित्य है, ध्रुव है और शाश्वत है। उन्होंने कभी नहीं कहा कि तुम मेरी शरण में आओ, मेरी भक्ति करो, मैं तुम्हारा उद्धार कर दूंगा। बल्कि उनका यही उपदेश था कि तुम्हीं तुम्हारा उद्धार कर सकते हो, तुम्हीं तुम्हारे मित्र हो और तुम्हीं तुम्हारे शत्रु। जीवमात्र के प्रति आदर यह उनका चिन्तन था। वे प्राणीमात्र के प्रति आदर रखने को कहते हैं।

महावीर क्षत्रिय थे। उनका जन्म नाम वर्द्धमान था। महावीर शब्द उनकी वीरता का परिचायक मात्र है। जो शत्रुओं को जीतता है वह वीर कहलाता है पर अपने आपको जीतने वाला अपने दुर्गुणों···कषयों··· अहन्ताओं···ममताओं को जीतने वाला महावीर होता है। ऐसे महावीर की परम्परा वीरत्व की परम्परा है··· कायरों की नहीं। तभी महात्मा गांधी ने भी कहा है कि—'अहिंसा धर्म, वीरों का धर्म है। कायरों का नहीं।'

महावीर का धर्म उनके समय में निर्ग्रंथ धर्म कहलाता था। किसी प्रकार की ग्रन्थी नहीं—ग्रन्थी हीन। मूर्च्छाओं, आसक्तियों और परिग्रहों से दूर, जिसमें किसी प्रकार का आग्रह नहीं जो सबका धर्म था अर्थात जन-धर्म सबके लिए। वह स्त्री का भी उद्धार कर सकता था, पुरुष का भी, गृहस्थ का भी और गृहत्यागी का भी, धनवान का भी और निर्धन का भी, ब्राह्मण का भी और चांडाल का भी, नगरवासी का भी वनवासी का भी। जिसने गलत अपनाई फिर वह चाहे कोई भी क्यों न हो अपना उद्धार कर सकता है। महावीर ने किसी को अपना भक्त बनने को नहीं कहा। उन्होंने तो मानव के भीतर जो आत्म-ज्योति अप्रगट थी उसे प्रगट करने का काम किया। उन्होंने कहा—'सुख कहां ढूंढते हो, वह तो तुम में ही स्थित है, सुख बाहर नहीं, भीतर है, जिस राग-द्वेष, अपने-पराये में तुम सुख की कल्पना कर रहे हो, परिग्रह, समृद्धि में सुख खोज रहे हो वहाँ सुख कहां है वहाँ तो दुःख का परम्परा अब

पारावार लहरा रहा है।

महावीर ने कहा था हमारी स्थिति ठीक उस बुढ़िया जैसी है जिसकी सूई तो घर के भीतर खोई थी किन्तु वह उसे ढूंढ रही थी राज-पथ पर, सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था के आंचल में। किसी ने पूछा भी—'मां क्या ढूंढ रही हो?' उत्तर मिला—'बेटे मेरी सूई खो गई है, उसे ही ढूंढ रही हूं।'

'कहां गिर गई माई आपकी सूई...?' किसी अनजान व्यक्ति ने प्रश्न किया। बुढ़िया ने बड़ी ही चतुराई से जवाब दिया—'बेटे खोई तो वह घर में ही है किन्तु घर में इस समय बहुत गहरा अन्धेरा है। अन्धकार में भला सूई ढूंढी जा सकती है? इसीलिए मैं इस प्रकाश के नीचे आ गई हूं। क्या हमारी भी स्थिति उस बुढ़िया से जरा भी भिन्न है? महावीर ने ठीक ही कहा था, सुख बाहर नहीं है। इसीलिए समता द्वारा अपना और दूसरों का सुख प्राप्त करने के लिए संयम रूपी एक मूल मन्त्र दिया महावीर ने।

नये युग में समता लाने का प्रयत्न अपने ढंग से विकसित हुआ। पिछले साठ वर्षों में रूस और अन्य पश्चिमी देशों में इसके लिये प्रयोग हुए...क्रांति द्वारा समता लाने के प्रयोग। ऐसी क्रांतियों में लाखों ही नहीं, करोड़ों मनुष्यों के प्राण लेकर भी सुदृढ़ राज्य सत्ता इस प्रयोग में सफलता नहीं पा सकी, क्यों?

यदि उनके अनुयायी उनके धर्म को विश्व कल्याणकारी मानते हों तो सहज में ही उसका प्रसार मानव मात्र के कल्याण के लिए करना सहज कर्तव्य हो जाता है। ऐसे श्रेष्ठ, मंगलमय धर्म को केवल कुछ लोगों अर्थात जैनियों तक ही सीमित रखना उचित नहीं होगा क्योंकि जैनियों की मान्यता है कि उनका धर्म सर्वोत्कृष्ट है। यदि उसका कुछ भी श्रवण कोई करले तो उसका कल्याण हो जाता है। रोहणिया चोर के कान में एक शब्द पड़ते ही उसका कल्याण हो गया तो फिर उस धर्म का लोगों में किया हुआ प्रचार व्यर्थ कैसे हो सकता है?

संसार के सभी सयाने एक मत हैं। देश, काल परिस्थितियों के अनुसार भले ही उनकी भाषा या शैली में कुछ अन्तर दिखाई दे जाय किन्तु फिर भी मूल बात सभी ने एक ही कही है। सभी ने कहा है कि सभी भगवान के बेटे हैं। सबको भाई समझ कर

प्रेम करो। हिंसा मानव जीवन का अभिशाप है। सभी एक ब्रह्म के रूप हैं, सभी को आत्मवत् समझो। प्राचीन सत्पुरुष ही नहीं बल्कि आज के समस्त दार्शनिक, मुनि, सन्त अर्थात आज के सयाने लोग भी यही बातें बार-बार दुहराते हैं कि समता के बिना कोई सुखी नहीं हो सकता। समाज में समता का लाना ही समाज में सुख और शान्ति उत्पन्न करने का एकमात्र उपाय है। यही विश्वशान्ति का राजा है, सुखी बनने का उपाय है। आज संसार की सबसे बड़ी समस्या है असमता। अब जब तक संसार में असमता रहेगी, असन्तोष रहेगा, अभावग्रस्त तथा समृद्धों का संघर्ष चलता रहेगा। तब तक शान्ति और सन्तोष-कामना आकाश में फूल खिलाने के समान ही व्यर्थ होगी। आज तो संघर्ष इतना अधिक तीव्र हो गया है कि उसके लिए समता के बिना दूसरा कोई उपाय शान्ति का रह ही नहीं गया है।

नये युग में समता लाने का प्रयत्न अपने ढंग से विकसित हुआ। पिछले साठ वर्षों में रूस और अन्य पश्चिमी देशों में इसके लिए प्रयोग हुये··· क्रांति द्वारा समता लाने के प्रयोग। ऐसी क्रांतियों में लाखों ही नहीं, करोड़ों मनुष्यों के प्राण लेकर भी सुदृढ़ राज्यसत्ता इस प्रयोग में सफलता नहीं पा सकी, क्यों? क्योंकि समता लाने के लिए जहां भगवान महावीर ने समता संयम और तप को साधन माना था वहां हिंसा, क्रूरता, दण्ड, कानून और नियन्त्रण द्वारा समाज में समता लाने के प्रयत्न हुये। मूल में ही भूल रह गई थी। जोर-जुल्म से मनुष्य को बदला नहीं जा सकता। क्योंकि वह बदलाव सिर्फ ऊपरी होता है। अहिंसा भीतर से उपजती है इसलिए भीतरी परिवर्तन अधिक जरूरी है। इसीलिए दण्ड, कानून और नियन्त्रण का परिणाम समस्या सुलझाने के ऐवज में उसे और अधिक उलझाने में कैसा होता है, यह आज हम सब देख ही रहे हैं। देश में किसी चीज का अभाव होता है, वह जरूरतमन्द को ठीक भाव से मिले, सबको उचित मात्रा में प्राप्त हो जाय इसलिए नियन्त्रण किये जाते हैं। नियन्त्रण होते ही चीज बाजार अदृश्य हो जाती है और जनता की परेशानी घटने के बदले और भी अधिक विषय हो जाती है। यह बात आज हमारे सामने यों घट रही है जैसे हम आइने के सामने खड़े अपना मुंह देख रहे हों। यदि यही समस्या भगवान महावीर के कथनानुसार सुलझाई जाय···संयम को अपनाया जाय तो आज जो विषय परिस्थिति है वह सहज ही दूर हो सकतीहै।

यदि किसी चीज की देश में कमी हो जाय तो उसका कम उपयोग और अधिक निर्माण हो, यह उस वस्तु का अभाव दूर करने का अमोघ उपाय है। अगर चीज कम है और उसका उपयोग कम किया जाय तो इसमें दुःख की कौन सी बात है ? हम धर्म के नाम पर खुशी से एक-एक महीने के उपवास कर लेते हैं तब कोई कष्ट महसूस ही नहीं होता क्योंकि हमने संयम को जीवन में स्थान दिया है। फिर सबके लिए हम कोई चीज कम खायें या उपयोग ही न करें तो इसमें दुःख क्यों होना चाहिए। दुःख और असन्तोष इसलिए पैदा होता है कि हम संयम से काम नहीं लेते। हमे तो ऐसे अभावों को हंसते हुये सह लेना चाहिए बल्कि तप की तरह ही हमें सन्तोष कर लेना चाहिए पर वैसा अनुभव नहीं आता और नियन्त्रण लगते ही ज्यादा से ज्यादा संग्रह की वृत्ति जाग जाती है। सभी अधिक से अधिक मात्रा उसी कमी वाली वस्तु को सहेजना चाहते हैं। दुःख अधिक बढ़ता है, असन्तोष अधिक बढ़ता है। यहाँ हम संयम को भूल जाते हैं। समता को धर्म नहीं मानते, किन्तु दूसरों से हमारा ध्यान अपने और अपनों तक अधिक सीमित हो जाता है। हम सुखी रहें। हमें सामान मिल जाय। आदमी का भी संकुचन होने लगता है, सिकुड़ जाता है उसका व्यक्तित्व। क्योंकि हमने सुख बाहरी चीजों में ही मान लिया है। यदि हमें किसी दिन कोई चीज न मिले तो क्यों न स्वेच्छा से उपवास कर मन में सन्तोष मान लें

...विनोबा ने कहा था कि यह भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव का वर्ष है। महावीर ने जोड़ने का काम किया था आप लोग भी यही करें। सत्य, अहिंसा और संयम का पालन मानव धर्म है उसे अपनायें। कहते है कि जो सभा जयप्रकाश जी और उनके बीच हुई थी उसकी सम्पन्नता महावीर की जय के साथ ही विनोबा भावे ने की थी।...

आपके यहाँ कोई मेहमान आता है तो आप उसके आगत स्वागत में अपना तन मन एक कर देते हैं। उसे खिलाने पिलाने में कितना उत्साह व्यक्त करते हैं। मैंने तो अनुभव किया है कि उसे इतना प्रेम और आग्रह पूर्वक खिलाने का प्रयत्न होता है कि वह बीमार ही हो जाय। उसके लिए कष्ट उठाने में आपको खुशी होती है। आपमें दूसरों के लिए कुछ करने की इच्छा मौजूद है क्योंकि वह मानव का सहज स्वभाव है। यही बात आप अभावग्रस्तों के लिए भी लागू करें तो संसार की विषम लगने वाली

समस्याओं का सहज ही हल निकल आये। यह जो अपने और परायेपन की दीवार उठा रखी है हमने, बस उसे गिराने की जरूरत है। यह जो हमने अपने और परायेपन का अलगाव पैदा कर रखा है, मानव-मानव के मध्य उन्हें जोड़ने का प्रयत्न करें तो काम बन सकता है। भगवान महावीर ने इसीलिए कहा था सबको अपने समान ही मानो। आज के सयाने भी यही कहते हैं। आज का एक सयाना विनोबा भावे भी यही कहता है। विनोबा ने कहा था कि यह भगवान महावीर का २५०० वां निर्वाण महोत्सव का वर्ष है। महावीर ने जोड़ने का काम किया था आप लोग भी वही करें। सत्य, अहिंसा और संयम का पालन मानवधर्म है, उसे अपनायें। कहते हैं कि जो सभा जयप्रकाशजी और उनके बीच हुई थी उसकी सम्पन्नता महावीर की जय के साथ ही विनोबा भावे ने की थी।

खैर, आप कहेंगे कि विनोबा जी तो महान सन्त हैं वे इस मार्ग को श्रेष्ठ मानते हैं यह तो स्वाभाविक ही है किन्तु आज के वैज्ञानिक इस विषय में क्या कहते हैं ?

आप उस विषय में भी जान लें। वैज्ञानिकों और बुद्धिवादियों को लगता था कि हमारे वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा हम ऐसी चीज बना देंगे कि जिससे संसार में शान्ति का निर्माण हो। अभावग्रस्तों का अभाव दूर हो। जो संसार की शान्ति में बाधक है उन्हें सबक सिखाया जाय। अणुबम बनाये गये उससे भी अधिक संहारक शस्त्रास्त्रों का निर्माण किया गया। पर देखा गया कि इससे शान्ति निकट आने के एवज में हमसे और भी ज्यादा दूर खिसक गई। और उससे उत्पन्न होती जा रही है और अधिक घोर अशान्ति, निराशा और कुंठा। फिर उन्होंने विचार किया कि हम जनता के उपयोग की वस्तुएं इतनी अधिक तादाद में बनायेंगे, इतने कम समय में कि जिससे सबको तत्काल उपलब्ध हो सके किन्तु जब उन उपलब्धियों के बावजूद संसार में अभाव ज्यों का त्यों रहा अपितु अभावग्रस्तों का समूह अधिक बढ़ गया तब उन्हें महसूस हुआ कि उनकी शोध व्यर्थ ही नहीं गई अपितु वे संसार में विनाश का सर्जक भी बन गई। सब वैज्ञानिक घबराये। १९७१ में सुरक्षा-परिषद के मंत्री से संसार भर के २३०० से अधिक वैज्ञानिकों ने निवेदन किया कि यदि इसी प्रकार विज्ञान का उपयोग होता रहा तो संसार को विनाश से कदापि नहीं बचाया जा सकता। विनाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि जिन रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा जीवनोपयोगी

वस्तुओं का उत्पादन बढ़ रहा है और उसका उपयोग बढ़ रहा है उससे जलवायु और जमीन दूषित हो रही है। यह दौड़ यदि इसी रफ्तार से चलती रही तो वह दिन दूर नहीं जब संसार विनाश के गर्त में जा गिरेगा। यह रफ्तार अधिक से अधिक सौ वर्ष मानवों अथवा कि प्राणियों को देगी, बस। फिर अभावग्रस्तों और समृद्धों का संघर्ष भी अधिक उत्पादन से कम नहीं हो पाया है। वह तो लंका की आग की भांति पल प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा है। जब तक स्वेच्छा से समृद्ध संयम नहीं अपनायेंगे इस खाई को नहीं पाटा जा सकता। जब तक समृद्ध, अभावग्रस्तों की जरूरतों का खयाल कर अपनी जरूरतें कम नहीं करेंगे, समस्या नहीं सुलझ सकती, उलझ भले ही जाय।

पिछले वर्ष आर्मस्ड्रम में फिर वैज्ञानिक व विचारक एकत्र हुए, उन्होंने एक निवेदन 'ब्लू प्रिण्ट आफ रवावैल' में इसी बात को पुनः जोरदार शब्दों में दोहराया।

उपरोक्त कारणों की तह तक पहुंचने पर यही महसूस होता है कि आज संसार को भगवान महावीर के उपदेशों की अत्यधिक आवश्यकता है। भगवान महावीर ने वास्तव में आज से २५०० वर्ष पूर्व जो बात कही थी वह आज के सन्दर्भ में भी कितनी कारगर है, उन्होंने ठीक ही कहा था कि मेरा धर्म नित्य है, ध्रुव व शाश्वत है और दूसरी बात भी हमें माननी होगी कि सभी सयाने एक मत।

ऐसे विश्व कल्याणकारी धर्म की बात उनके २५००वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर अपनाना और उसका प्रचार-प्रसार करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। मैं तो यह कहूँगा कि हम सबके सुख और कल्याण के लिए, सन्तोष और मंगल के लिए यह करना ही आज के युग मे सच्ची मानवता को प्राप्त करना है।

जैनी मानते हैं कि भगवान महावीर का धर्म विश्व कल्याणकारी, इहलोक तथा परलोक दोनों का ही कल्याण करनेवाला है। तभी स्वाभाविक ही उनमें इस धर्म के प्रसार के लिए उत्साह होना स्वाभाविक हैं। किन्तु वह उत्साह तभी सार्थक होगा जब हम इस धर्म को स्वयं के भीतर उतारें। जब तक हम स्वयं उसे नहीं जीते, दूसरों को उपदेश देना कोरे गाल बजाने जैसा ही होगा। हमें भगवान महावीर को अपने हृदय में स्थान देना है। जब वे इस धर्म का स्वयं आचरण करेंगे तभी उसका वे दूसरों में भी प्रचार-प्रसार कर सकेंगे। मैं स्वयं सिगरेट पीऊं और अपने पुत्र

को कहूं कि बेटे सिगरेट पीना हानिकारक है तो मेरे उस कहने का कोई औचित्य नहीं है। इसीलिए मैं सभी जैनियों से आग्रहपूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि वे भगवान महावीर के धर्म को यदि विश्व-कल्याणकारी मानते हों तो उन्हें जैन धर्म जिस रूप और जिस भावना से समझ में आया हो वैसा उसका स्वयं भी पालन करें। मैं इस विवाद में नहीं पड़ता कि सच्चा जैन धर्म कौन-सा है। मेरा तो यह विश्वास है कि भगवान महावीर ने जो कुछ भी कहा है वह सत्य है मैं मानता हूं महावीर की बात कि प्रत्येक मनुष्य में अपने विकास की पूर्ण क्षमता है। आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सामर्थ्य और अनन्त आनन्द है। भले ही उस पर कर्म-बन्धनों के आवरण आ गये हों किन्तु फिर भी सूर्य को बदली में छिपाया नहीं जा सकता, दीपक को कपड़ से ढक देने से उसका प्रकाश मन्द नहीं हो जाता। वैसे ही हम श्रम करके वे आवरण हटा सकते हैं। अधिक न सही सूर्य की बात भी मैं नहीं करूंगा। हर व्यक्ति में लालटेन की तरह इतना प्रकाश तो अवश्य ही उपलब्ध है कि जो उसे ठीक मार्ग का दर्शन करा सके और वह यदि धर्म मार्ग पर चलता है तो अगला कदम कहाँ रखा जाय यह वह जानता है। इसलिए धार्मिक बनने की जरूरत है। धार्मिकता दिखाने की वस्तु नहीं है, जीवन में उतारने की बात है। अहिंसा की श्रेष्ठता से कौन परिचित नहीं? सत्य क्या है यह छोटा बच्चा भी जानता है। सिर्फ जरूरत है इस बात की कि तदनुसार आचरण किया जाय। इसलिए धर्म क्या है यह दूसरे से पूछने की अपेक्षा अपनी आत्मा से ही पूछिये और जो वह कहे तदनुसार आचरण करिये। रास्ता अपने आप मिल जायगा। प्रत्येक बुद्ध की बात उत्तराध्ययन में लिखी है उसका रहस्य यही है। जब मनुष्य धर्माचरण कर आत्मा को विशुद्ध करने की ओर कदम बढ़ाता है तो वह अपना पूर्ण विकास कर पाने में सक्षम होने लगता है। बस इसमें शर्त इतनी सी ही है कि धर्माचरण करने लगेंगे तो उसका दूसरों पर भी प्रभाव पड़ेगा। इसमें प्रकाश उत्पन्न होगा तो लोगों को भी अन्धकार से त्राण अवश्य ही प्राप्त होगा।

हम भगवान महावीर के धर्म को अपने और दूसरों के कल्याण के लिये, इहलोक और परलोक के कल्याण के लिए अपनावें। यदि वैसा कर सकें तो निश्चित ही हमारी उस महान विश्व-कल्याणकारी पुरुष के प्रति सच्ची श्रद्धाँजलि होगी। उनकी शब्दों से बड़े बड़े वाक्यों से आदर प्रगट करने की अपेक्षा उनके उपदेशों को जीवन में उतारना और प्रचार करना ही उनके प्रति की गई सर्वोच्च श्रद्धाँजलि होगी। ●
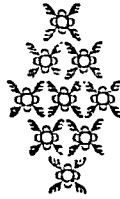
अनेकान्त दर्शन

—चेतन प्रकाश पाटनी

अनेकान्त जैन दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसकी भित्ति पर समस्त जैन तत्वज्ञान अवस्थित है। अनेकान्त शब्द अनेक और अन्त इन दो शब्दों की संधि से बना है।

अनेके अन्ताः धर्माः यस्मिन् स अनेकान्तः। अनेक का अर्थ है एक से अधिक अर्थात् कई और अन्त का अर्थ है धर्म अर्थात् वस्तु अनेक धर्मात्मक है। सृष्टि का प्रत्येक चेतन और अचेतन तत्त्व अनन्त धर्मों का भण्डार है। अनेक दृष्टियों से वस्तु स्वरूप का विचार करना यह अनेकान्त का सामान्य स्वरूप है। प्रत्येक धर्म अपने प्रतिपक्षी के साथ वस्तु में रहता है, यह बताना ही अनेकान्त का प्रयोजन है।

'वत्थु स्वभावो धम्मों' 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' जैसे सिद्धान्त सूत्रों के प्रबल समर्थक भगवान महावीर उत्कृष्ट अहिंसक तीर्थंकर थे। मन, वचन और काय त्रिविध अहिंसा की सर्वांगसिद्धि वस्तु स्वरूप के यथार्थ या सम्यग्ज्ञान के बिना सम्भव न थी। महावीर ने बताया कि हम भले ही शरीर से दूसरे प्राणियों का वध न करें पर यदि वचन, व्यवहार और चित्तगत विचार हिंसापूर्ण है तो कायिक अहिंसा का पालन करना भी कठिन है क्योंकि द्रव्य हिंसा या दीख पड़ने वाली हिंसा भीतर बैठी हिंसा का ही फलन या प्रतिरूप है। असली दुश्मन भीतर है, बाहर तो उसकी छायामात्र है। जैन धर्म में मन में स्थापित इसी हिंसा को निकाल फेंकने पर बल दिया गया है। भारतीय शास्त्रार्थों का इतिहास अनेक हिंसाकाण्डों से भरा पड़ा है अतः यह आवश्यक था कि अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा के लिए यथार्थ तत्त्वज्ञान हो और विचार शुद्धि-मूलक वचन शुद्धि की जीवन व्यवहार में प्रतिष्ठा हो।

तत्कालीन भारत में तीन बड़ी विचार धाराएं (देवतावाद, जड़वाद और आध्यात्मवाद) कालदोष से बिगड़कर अपने अपने सल्लक्ष्य, सदज्ञान और सत्पुरुषार्थ को छोड़कर केवल ऊपरी चमत्कारों मौखिक वितण्डावादों और रूढ़िक क्रियाकाण्डों में फंस गई थीं। अहंकार विमूढ़ता और दुराग्रह ने इन्हें तेरह-तीन किया हुआ था। इनके पोषक और उपासक कुछ भी रचनात्मक कार्य न करके केवल अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा करने में ही

'महावीर ने स्थापित किया कि वस्तु को तुम जिस दृष्टिकोण से देख रहे हो वस्तु उतनी ही नहीं है, उसमें ऐसे अनन्त दृष्टिकोणों से देखे जाने की क्षमता है। उसका विराट् स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम होता है, उस पर ईमानदारी से विचार करो तो उसका विषय भूत धर्म भी वस्तु में विद्यमान है।...

अपने को कृतकृत्य मान रहे थे। पक्षपात इतना बढ़ गया था कि सभी सच्चाई के एक पहलू को देखते जो उन्हें मान्य था, अन्य सभी पहलुओं की वे अवहेलना करते थे—वे सब एकान्तवादी बने थे। इनकी बुद्धि कूटस्थ हो चली थी। तब इसमें न दूसरों के विचारों को सुनने और समझने की सहनशीलता थी और न दूसरों को अपनाने की उदारता थी, न जमाने की परिस्थिति के साथ बदलने, सुधरने और आगे बढ़ने की ताकत थी। तब इनके दिनों में संकीर्णता ज़बान में कटुता और बर्ताव में हिंसा भरी थी[१]।

ऐसे वातावरण में भगवान ने विचार किया था जब तक इन मतवादों का वस्तु स्थिति के आधार से यथार्थ दर्शनपूर्वक समन्वय न होगा तब तक हिंसा और संघर्ष का मूलोच्छेद नहीं हो सकता। उन्होंने अपने सम्यग्ज्ञान के बल से तत्वों का साक्षात्कार किया और लोक को बताया कि—सृष्टि का प्रत्येक चेतन अचेतन तत्व अनन्त धर्मों का भण्डार है। इसके विराट स्वरूप को साधारण मानव पूर्वरूप में नहीं जान सकता। उसका क्षुद्र सीमित ज्ञान वस्तु के एक एक अंश को जानकर (कई अन्धों ने हाथी को अलग अलग टटोलकर जिस प्रकार वर्णन किया था) अपने में पूर्णता का दुरभिमान कर बैठा है। विवाद वस्तु में नहीं है, विवाद तो देखने वालों की दृष्टि में है।

महावीर ने स्थापित कि वस्तु को तुम जिस दृष्टिकोण से देख रहे हो वस्तु उतनी ही नहीं है उसमें ऐसे अनन्त दृष्टिकोण देखे जाने की क्षमता है। है। उसका विराट स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है। तुम्हें जो दृष्टिकोण विरोधी मालूम होता है उस पर ईमानदारी से विचार करो तो उसका विषयभूत धर्म भी वस्तु में विद्यमान है। चित्त से पक्षपात की दुरभिसन्धि निकालो और दूसरे के दृष्टिकोण के विषय को भी सहिष्णुतापूर्वक खोजो वह भी वहीं लहरा रहा है। हाँ, वस्तु की सीमा और मर्यादा का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। तुम चाहो कि जड़ में चेतनत्व खोजा जाय या चेतन में जड़त्व, तो वह नहीं मिल सकता, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ के अपने अपने निजी धर्म सुनिश्चित हैं[२]।

---

१. श्री जयभगवान जैन: इतिहास में भगवान महावीर का स्थान-पृ० २

२. श्री महेन्द्रकुमार जैन: जैन दर्शन पृ० ५५

"यदेव तत् तदेव अतत् । यदेवैकं तदेवानेकम्, यदेव सत तदेनसत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यमित्वक वस्तुवस्तुत्वनिष्पादक परस्पर विरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशन मनेकान्तः ।"

जो वस्तु तत्स्वरूप है वही वस्तु अतत्स्वरूप भी है; जो वस्तु एक है वही अनेक भी है, जो वस्तु सत् है वही असत भी है तथा जो वस्तु नित्य है वही अनित्य भी है । इस प्रकार अनेकान्त एक ही वस्तु में वस्तुत्व के कारणभूत व परस्पर विरोधी अनेक धर्मयुगलों को प्रकाशित करता है—अनेकान्त का लक्षण है—

"सदसन्नित्यादिसर्वथैकान्तप्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्तः ।"

वस्तु सर्वथा सत् ही है, अथवा असत ही है, नित्य ही है, अथवा अनित्य ही है, इस प्रकार सर्वथा एकान्त के निराकरण करने का नाम अनेकान्त है। वस्तु में परस्पर विरोधी प्रतीति होने वाले दो धर्मों के अनेक युगल रहते हैं ।

एकान्त दृष्टि कहती है कि तत्व ऐसा 'ही' है और अनेकान्त दृष्टि कहती है कि तत्व ऐसा 'भी' है । विवाद की जड़ 'ही' है । 'भी' सत्य को प्रस्तुत कर विवाद का शमन करता है । 'ही' सत्य का संहार करता है । इस 'ही' के कारण ही एक मत का दूसरे से विरोध प्रस्तुत हो जाता है और कलह एवं संघर्ष की स्थिति आ जाती है।···

यह बात भी ध्यान में रखने की है कि वस्तु अनन्त धर्मात्मक है न कि सर्वधर्मात्मक । एकान्तवादियों की समझ में यह बात आती ही नहीं कि वस्तु में अनेक विरोधी धर्म भी एक साथ रह सकते हैं । उनकी संकीर्ण दृष्टि पर एकान्त का चश्मा चढ़ा हुआ है । अतः सबको पदार्थ अपनी अपनी दृष्टयानुसार ही दिखाई दे रहा है—जबकि सचाई यह है कि किसी भी पदार्थ के स्वरूप की छानबीन की जाए तो वह अनेक धर्मात्मक सिद्ध होता है, एकान्त रूप कोई भी पदार्थ सिद्ध नहीं होता ।

मौलिक द्रव्य की दृष्टि से आत्मा नित्य है. शाश्वत है वह अनादिकाल से अनन्तकाल तक बना रहता है परन्तु पर्याय दृष्टि (सांसारिक दशा) से वह अनित्य भी सिद्ध होता है । क्योंकि कभी वह मनुष्यगति में होता है तो कभी तिर्यंचगति, देवगति या नरकगति में भी । इस तरह एक ही आत्मा में नित्यता भी है और अनित्यता भी ।

एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र, दादा, पोता, पति, ससुर. साला, बहनोई,

दामाद, आदि अनेक सम्बन्धों का केन्द्र होता है। एक ही पदार्थ किसी के लिए खाद्य होता है तो किसी के लिए अखाद्य। दूध शरीर को पुष्ट करता है परन्तु दस्त के मरीज के लिए विष तुल्य है। एक रेखा अपेक्षाकृत बड़ी रेखा से छोटी है तो अपेक्षाकृत छोटी रेखा से बड़ी भी है। एक भवन किसी अपेक्षा से बड़ा है, सुन्दर है तो दूसरी अपेक्षा से छोटा और असुन्दर भी।

इन अनेक प्रकार की विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तरूप में पाया जाता है। परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाली विशेषताएं एक ही पदार्थ में ठीक सही तौर पर पायी जाती हैं। प्रत्येक पदार्थ एवं अपेक्षा सत है और पर की अपेक्षा असत हैं। इसमें विरोध कहाँ है? विरोध तो तब होता जब जिस दृष्टि से वह सत् है उसी दृष्टि से असत् होता, किन्तु अनेकान्त सिद्धान्त ऐसा कभी नहीं कहता। वस्तु में केवल सत और असत धर्म ही नहीं रहते किन्तु नित्यत्व और अनित्यत्व, एकत्व और अनेकत्व आदि धर्म भी एक ही समय में रहते हैं।

वस्तु के समीचीन ज्ञान के लिए अनेकान्त दर्शन की महती आवश्यकता है, इसके अभाव में हम किसी बात को ठीक ठीक न समझ सकेंगे। एकान्त दृष्टि कहती है कि तत्व ऐसा 'ही' है और अनेकान्त दृष्टि करती है कि तत्व ऐसा 'भी' है। विवाद की जड़ 'ही' है। 'भी' सत्य को प्रस्तुत कर विवाद का शमन करता है। 'ही' सत्य का संहार करता है। इस 'ही' के कारण ही एक मत का दूसरे मत से विरोध उत्पन्न हो जाता है और कलह एवं संघर्ष की स्थिति आ जाती है। "भी" के वैविध्य में 'ही के यथार्थ दर्शन सम्भव है। 'भी' की सुकुमार संवेदनशील अंगुलियां ही को 'ही' मुट्ठी में पकड़ने की क्षमता रखती है।[१]

अनेकान्त पूर्णदर्शी है और एकान्त अपूर्णदर्शी। अनेकान्त की दृष्टिपूर्णता की ओर होती है, वह अखण्ड को खण्डश खानकर भी अखण्ड देखती है; किन्तु जिनकी दृष्टि विकृत है उन्हें वस्तु एकान्तरूप ही दिखती है। किसी भी तत्व के विषय में कोई भी तात्विक दृष्टि एकान्तिक नहीं हो सकती। अनेकान्तात्मक वस्तु स्वानुभव सिद्ध है, वस्तु को अनेकान्तात्मक सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसकी व्यापकता स्वतः स्पष्ट हैं। सभी दर्शनों को इसे स्वीकारना पड़ा है—महामहोपाध्याय पण्डित

१. डा० नेमीचन्द जैन: वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्धमान महावीर पृ० १६०

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी लिखते हैं—"सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर सब ही दर्शनों में किसी न किसी स्थान पर जाकर यह अनेकान्तवाद मानना ही पड़ता है।"२

बौद्ध दर्शन पदार्थों को क्षणिक मानता है परन्तु उनकी पहचान के लिए एक सन्तान अर्थात सिलसिला भी मानता है। इस प्रकार सन्तान पदार्थों से भिन्न भी है और अभिन्न भी, यही भी मानना पड़ेगा। यहां बौद्ध दर्शन में अनेकान्त आ गया।

न्यायादर्शन में पदार्थ को सामान्य और विशेप दो रूपों में माना जाता है जैसे पृथ्वी एक सामान्य हैं और घट पट आदि उसके विशेप। परन्तु पृथ्वी से व्यापक द्रव्य पदार्थ की अपेक्षा पृथ्वी भी विशेष कही जाएगी, तब यही कहना होगा कि पृथ्वी सामान्य भी है और विशेप भी। यह अनेकान्तवाद ही हुआ।

साँख्यदर्शन में 'सत्कार्यवाद' माना जाता है अर्थाते सब कार्य सदा ही सतरूप हैं। प्रश्न होता है कि यदि सब पदार्थ अपनी उत्पत्ति से पूर्व भी सतरूप ही हैं तो फिर उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न क्यों करना पड़ता है? इसका उत्तर यों दिया जाता है कि सब कार्य अपने अपने कारण में अव्यक्त अर्थात अप्रकट सूक्ष्म दशा में रहते हैं; व्यक्त करने के लिए यत्न करना पड़ता है।

"वेदान्त के भाष्यकारों के सिद्धान्त में (रामानुजाचार्य: ब्रह्म से जीव का भेद और अभेद; वल्लभाचार्य: भगवान सब विरुद्ध धर्मों का आधार है) कहीं न कहीं जाकर अनेकान्तवाद को स्वीकार करदा पड़ता है। इससे इस अनेकान्तवादरूप जैन सिद्धान्त की एक प्रकार से व्यापकता ही सिद्ध हो जाती है।"

इस प्रकार पदार्थ की सही सही तलाश और जानकारी कराने वाली कोई सफल विधि है तो तो वह अनेकान्त दृष्टि ही है सापेक्षता (Relativity विज्ञान का मूल आधार है, जैनधर्म आत्मविज्ञान है अतः उसका सारा भवन इसी दृढ़ नींव पर खड़ा है। 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' में कहा है—

,एकेनाकर्षन्ती, श्लथयन्ती वस्तुतत्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिन गोपी।"

जिस तरह दही को मथकर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खींचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला कर

२. दर्शन अनुचिन्तम पृ० ३२

देती है; इसी तरह जैन पदार्थ निर्णय-पद्धति (अनेकान्त) पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करती है तो दूसरे को गौण कर देती है, उसे सर्वथा छोड़ नहीं देती।

अनेकान्त दृष्टि ही तत्व का ठीक ठीक निर्णय कर सकती है। वह मानव मस्तिष्क से दुराग्रहपूर्ण विचार दूर कर शुद्ध एवं सत्य विचार के लिए मनुष्यों का आह्वान करती है। अनेकान्त दृष्टि मानस समता और अहिंसा की प्रतीक है, यदि आज का मानव अनेकान्त के रूप को भली प्रकार से समझ लें तो हिंसा, कलह, संघर्ष और युद्ध की विभीषिका से बचा जा सकता हैं मानव समता का ज्ञान होने से झगड़े सदा सदा के लिए समाप्त हो सकते हैं, इस दृष्टि से अनेकान्त तत्वज्ञान की संसार को महती आवश्यकता है। विचार (मन) जगत का अनेकान्त ही नैतिक जगत में अहिंसा का रूप धारण करता है।

अनेकान्त के इस विवेचन में स्याद्वाद (वाचनिक अहिंसा) और सप्त-भंगी का विवेचन विस्तारभाव से नहीं लिखा गया है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने अपने युग के विविधि विचारों को समन्वित करने तथा संघर्ष परिहार हेतु अनेकान्त दृष्टि को प्रस्तुत किया। उसने भारतीय विचारकों में सत्य को अनेक पहलुओं से देखने और जानने के लिए एक विशेष स्फूर्ति पैदा कर दी। वर्तमान में भी इसी सही समझ की अत्यन्त आवश्यकता है। जैन दर्शन, आनाग्रही, उदार और सन्तुलित है। अनेकान्तवाद में आज्ञानुशासन तथा जीवन के अन्य विविध सन्दर्भों के लिए एक विधायक जीवन दृष्टि समाई हुई है। डा० एस० वी० नियोगी ने लिखा है—

"जैनाचार्यो की यह वृत्ति अभिनन्दनीय है कि उन्होंने ईश्वरीय आलोक (Revelation) के नाम पर अपने उपदेशों में ही सत्य का एकाधिकार नहीं बताया इसके फलस्वरूप उन्होंने साम्प्रदायिकता और धमान्धता के दुर्गणों को दूर कर दिया।···अनेकान्तवाद अथवा स्यद्वाद विश्व के दर्शनों में अद्वितीय हैं।······सम्यग्यदर्शन ओर स्याद्वाद के सिद्धान्त औद्योगिक पद्धति द्वारा प्रस्तुत की गई जटिल समस्याओं को सुलझाने में अत्यधिक कार्यकारी होंगे।"

—जैनशासन से उद्धृत

राग में जिस वस्तु को हम स्वर्ग समझते हैं; विराग दृष्टि से उसको नरक समझते हैं। किन्तु जब वीतरागता का उदय होता हैं तो मन ऐसा भाव रहित हो जाता है जिसमें किसी प्रकार की अनुभूति नहीं होती...

तीर्थंकर महावीर
एक चिंतन

—कु० सुधा जैन एम० ए०

महावीर जैसे महापुरुष के विषय में कुछ कह सकना वास्तव में बहुत कठिन है। महावीर के व्यक्तित्व को २५०० वर्षों के बाद भी मनीषी समझने की कोशिश कर रहे हैं। महावीर वीतरागी थे। उनका राग खत्म हो चुका था। राग का अर्थ होता है रंग अर्थात् महावीर के ऊपर किसी भी प्रकार का रंग नहीं चढ़ा था कि ऐसा होना चाहिए, उनके लिए जो हो सो हो, जैसा भी हो, हो, महावीर को उससे क्या लेना देना ? महावीर तो राग-विराग से मुक्त हो जीवन यात्रा के अन्तिम लक्ष्य वीतरागता को प्राप्त हो चुके थे। करने और होने में अन्तर है। क्योंकि करने में अहम् का भाव जाग्रत है जबकि होने में सहजता या प्राकृतिकता।

विराग में भी राग समाहित होता है और राग की अपेक्षा विराग की पकड़ भी अधिक जटिल होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि किसी मित्र को जितना हम राग द्वारा पकड़ते हैं अपने शत्रु को उससे कहीं अधिक द्वेष वृत्ति से पकड़े रहते हैं। इसी प्रकार राग में जिस वस्तु को हम स्वर्ग समझते हैं विराग दृष्टि से उसी को नर्क समझते हैं। किन्तु जब वीतरागता का उदय होता है तो मन ऐसा भावरहित हो जाता है जिसमें किसी प्रकार की अनुभूनि नहीं होती। राग और विराग में मन सोचने की क्रिया करता रहता है किन्तु वीतरागता आने पर वह शून्य हो केवल मात्र द्रष्टा रह जाता है। महावीर भी ऐसे ही थे जो सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखते थे संसार में रहते हुए भी संसार से मुक्त थे। जैसे किसी कवि की पंक्ति है।

> जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है,
> भीतर बाहर पानी।
>
> फूटा कुम्भ जल-जल ही समाना,
> यह तथ्य कहहु ज्ञानी॥

महावीर का जीवन भी कुम्भ के समान ही संसार रूपी जल के मध्य रहता था। यही कारण था कि कृषक के द्वारा बैल देखने का आदेश देने पर, बैल खो जाने पर महावीर पर चोरी का आरोप लगाने पर, चोर समझ कर प्रताड़ित करने पर और पुन: अपनी गल्तियों की अनुभूतियों के बाद क्षमा-याचना करने पर सभी स्थितियो में महावीर मौन थे।

'ऋषमदेव: एक परिशीलन' में एक स्थान पर प्रसंग आता है कि जब ऋषमदेव के ६८ पुत्र अपने ज्येष्ठ भ्राता भरत द्वारा अधीनता स्वीकार अथवा युद्ध करने का आदेश पाते हैं तो ६८ पुत्र प्रव्रजित ऋषमदेव से उसे तुम लोग लेने की कोशिश क्यों नहीं करते ? सभी भाइयों को वीत-राग हुआ और सभी प्रव्रजित हुए। वर्धमान के मन की भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। उन्होंने भी किसी वस्तु का त्याग नहीं किया था बल्कि वस्तुयें स्वयं ही व्यक्त हुई। मोक्ष रूपी विशाल राज्य के सम्मुख भौतिक राज्य, सुख सम्पदा महावीर को लुभा न सके।

छोड़ता वह है जो किसी वस्तु को ग्रहण किये रहता है। ग्रहण करने वाला ही त्याग करता है, किन्तु जिसने ग्रहण ही नहीं किया वह क्या त्याग करेगा। महावीर ने भी महल, सुख, वैभव किसी का त्याग नहीं किया था क्योंकि महावीर ने उसको अपना माना

छोड़ता वह है जो किसी वस्तु को ग्रहण किये रखता हैं। ग्रहण करने वाला ही त्याग करता है, किन्तु जिसने ग्रहण ही नहीं किया वह क्या त्याग करेगा···महावीर ने वैभव का त्याग नहीं किया क्योंकि उन्होंने उसे अपना माना ही नहीं था···

अपने कर्तव्य के लिए पूछते हैं कि कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए···? राज्य के लिए ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध कर क्या भातृ युद्ध की परम्परा का निर्माण करे ? अथवा···२···पलायनवादी बनकर राज्य का त्याग करें ? उत्तर में ऋषमदेव कहते हैं कि तुम लोगों को मैंदोनों ही मार्गों को अपनाने को नहीं कहता। तुम लोगों के इन छोटे-छोटे राज्यों से भी जो बड़ा राज्य है ही नहीं था। बेड़ी तो बेड़ी ही है चाहे वह लोहे की हो, सोने की अथवा हीरे मोतियों से जड़ी हो। महावीर तो एक ऐसे स्वतन्त्र विचारक पक्षी थे जिसे न सोने का पिंजरा लुभा सका न हीरे मोतियों का। क्या कभी किसी पक्षी को यह कहते सुना गया है कि मैंने सोने के पिंजरे का त्याग किया है ? फिर विवेकी मानव ने त्याग की एक ऐसी परिभाषा को क्यों जन्म

दिया ? क्यों ऐसी कथायें रच डाली है कि अमुक व्यक्ति बहुत महान है उसने लाखों की सम्पत्ति का त्याग किया ? और यही कारण है कि त्याग की एक नई पृष्ठभूमि से अपने को बांध लेने के कारण ही कोई २५०० वर्षों में भी महावीर न बन पाया।

जो क्रिया सहज रूप से होती है उसको किसी को दर्शाने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे मनुष्य को जन्म से ही दो आंख होती है। वह किसी से नहीं कहता कि देखो मेरे दो आँख हैं, में दो आंख वाला हूं। किन्तु जो जन्म से एक आंख पाया है और कालान्तर में विज्ञान द्वारा दो आंख वाला होता है तो वह लोगों से कहता फिरता है कि देखो मैं दो आँख वाला हो गया। महावीर की नग्नता भी सहज रूप से हुई थी इसलिए उनको किसी से कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी कि—'मैंने त्याग किया है, मैंने घर छोड़ा है, मैं नग्न हूं, मैं दीर्घ तपस्वी हूं।'

महावीर क्रांतिकारी युग के उन्नायक थे। क्रांति तभी होती है जब कोई नवीन विचारधारा का सृजन होता है। वर्षों से चली आयी धारा को मोड़ देना है। पंथ का अनुयायी बनकर पंथ को आगे बढ़ाने वाले से क्रांति नहीं होती। महावीर तो ऐसे स्त्रोत थे जो स्वत: उत्पन्न होकर आगे बढ़ता हुआ। अपना मार्ग बनाता जाता है। महावीर भी जिधर चले, उधर से ही राह बनी, वर्धमान की तपस्या श्रमण की तपस्या थी श्रम में रमण करने वाले अत: महावीर का ज्ञान गुरु द्वारा प्रदक्त आज्ञा प्रधानी नहीं वरन् श्रम द्वारा परीक्षा करके अर्जित ज्ञान था। महावीर ने प्रथम तो स्वयं नई दृष्टि पायी फिर करुणा दृष्टि से, करुणा भाव से लोगों को नई राह दिखायी। महावीर चौराहे के दीपक बने जिससे सभी दिशाओं में प्रकाश बिखरा। कोशिश है मेरे भी जीवन में इस दीपक को कुछ न सही, एक ही किरण आ जाये।

ऋषभदेव: एक परिशीलन—ले० देवेन्द्र मुनि शास्त्री।

'रिश्वत, बेईमानी, अत्याचार अवश्य नष्ट हो जावें यदि हम भगवान महावीर की सुन्दर और प्रभावशाली शिक्षाओं का पालन करें। बजाय इसके कि हम दूसरों को बुरा कहें और उनमें दोष निकालें अगर भगवान महावीर के समान हम सब अपने दोषों और कमजोरियों को दूर कर लें तो सारा संसार खुद-ब-खुद सुधर जाये।'

—स्व० श्री लाल बहादुर शास्त्री

तृप्ति और पूर्ति

(डा० इन्द्र चन्द्र शास्त्री, एम० ए० पी० एच० डी०)

दशवैकालिक सूत्र में आया है कि धर्मात्मा को देव भी नमस्कार करते हैं— 'देवापि तं नमं सति।' आधुनिक शब्दों में देव का अर्थ हैं सम्पन्न व्यक्ति। जिसे न कोई अभाव है और न शारीरिक कष्ट। भोग विलास की विपुल सामग्री है। कोई इच्छा अधूरी नहीं रहती। धर्मात्मा का अर्थ है वह व्यक्ति जो इच्छाओं से ऊपर उठ गया है। इसी का नाम संयम है। पूर्ति की क्षमता रखने वाला संयमी को नमस्कार करता है।

इच्छा एक प्रकार की अतृप्ति है। उसे दूर के लिए तरह-तरह की सामग्री जुटाई जाती है। इसके लिए व्यक्ति को पराधीन होना पड़ता है। यह ज्यों-ज्यों प्रवल होती है, उसी अनुपात में पराधीनता बढ़ती चली जाती है। यदि स्वाधीनता सुख का आवश्यक तत्व है तो स्वाधीन रहने वाला संयमी पराधीन रहने वाले विलासी से अधिक सुखी है।

हम भीख माँगने वाले वालक को जूठी मिठाई देते हैं और दुत्कारते हुए कहते हैं 'ले, खा ले'। हम गालियाँ सुनाते रहते हैं और वह खाता रहता है। जिन्हा तृप्ति के लिए अपमान की परवाह नहीं करता।

दूसरे वालक को आदर के साथ बुलाया जाता है। थाल में बढ़िया मिठाई परोसी जाती है। किन्तु अपमान की तनिक सी बात सुनते ही उठकर चल देता है। वह सुख की परिभाषा प्रतिष्ठा को लेकर करता है।

व्यापारी जिस ग्राहक को कमाई कराने वाला समझता है, उसकी कठोर बातें भी सह लेता है। क्षत्रिय भूखों मरना पसन्द करता है, किन्तु अपमान नहीं सहता।

धर्म बाह्य निर्भरता को समाप्त कर देना चाहता है। उसका कथन है न तो भूख को भूख समझो और न अपमान को अपमान। जिन्हा तृप्ति और अहंकार तृप्ति में कोई भेद नहीं। दोनों पराधीनता की ओर ले जाती हैं। कांटों पर क्रोध करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि हम जूते पहन लें। इसी का नाम स्वाभाविक तृप्ति है और वह पूर्ति से कहीं श्रेष्ठ है।

एक बात और है। पूर्ति द्वारा किया जाने वाला सन्तोष स्थायी नहीं होता। प्रत्येक पूर्ति नई अतृप्ति को जन्म देती है। वह जुगनू की चमक के समान होती है जो एक झलक दिखा कर पुनः अन्धकार बन जाती है। इसके विपरीत संयम स्थायी समाधान है।

विज्ञान विकास की परिभाषा पूर्ति को लेकर कर रहा है और धर्म संयम अर्थात् निजी तृप्ति को लेकर। वस्तुतः देखा जाए तो पूर्ति तृप्ति के लिए होती है। वह अपने आप में लक्ष्य नहीं है। देवताओं द्वारा संयमी को नमस्कार का यही अर्थ है अर्थात् तृप्ति पूर्ति से ऊंची है।००

वीर के उपदेश व हमारा कर्त्तव्य

श्री मोतीलाल सुराणा
(सुप्रसिद्ध विचारक)

प्रत्येक जीवत्र प्राणी जीवन में सुख की इच्छा करता है। कोई भी दुख नहीं चाहता पर इच्छा करने से तो कुछ नहीं मिल जाता। सुख तो तभी मिलता है जब मनुष्य उसे पाने के लिए जो सही मार्ग है उस पर चले। जीवन को सुखी बनाने के लिए महापुरुषों ने सदा भूले हुए लोगों की अपनी कथनी एवं करनी द्वारा उपयोगी नियम बताये हैं। जो उन नियमों का पालन करता है वह जीवन को सफल बनाने में उत्तीर्ण हो जाता है पर जो इन बातों की ओर ध्यान नहीं देते वे पग-पग पर ठोकर खाते रहते हैं।

यह निर्विवाद है कि जन-जीवन को सुखी बनाने के लिए समाजवादी समाज रचना की आवश्यकता है तथा यह भी ध्रुव सत्य है कि उस दशा में समाज के प्रत्येक घटक में मानवीय गुणों का होना जरूरी है। नागरिकता के नियम सनातन एवं पुरातन हैं व उसी के आधार पर समाज सम्पन्न व सुखी बन सकता है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने जनता को जो उपदेश दिये उसमें मानवीय गुणों का वर्णन भलीभांति मिलता है तथा इन नियमों का पालन करने वाला सच्चे सुख की प्राप्ति करता है।

सुख दो प्रकार के होते हैं। एक सुख तो वह जो हमें कुछ समय के ऊपरी आनन्द देता है तथा दूसरा वह जो सदा हमें आनन्द के वातावरण में रहता है इस प्रकार कुछ समय के लिये जो सुख मिलता है वह कभी भी दुख में परिवर्तित हो सकता है। जैसे अपने बैठने के लिए एक कार खरीदी चूंकि आप पहले पैदल जाते थे और और अब मोटर में जाते हैं अतः निश्चित ही था पैदल चलने के कष्ट से मुक्त हो गए और मोटर में बैठकर अपने इच्छित स्थान पर बहुत कम समय में पहुंच गये पर कभी यह भी हो सकता है कि मोटर रास्ते में खराब हो जाय व आप अपने स्थान समय पर पहुंच सकें। कभी-कभी तो जंगल में बिना खाये पिये के दिन बिताना पड़ता है। तो मतलब यह है कि जो चीज आप सुखदायी है वह कल दुख का कारण भी बन सकती है। अतः महापुरुषों ने तो इन सभी संसारी सुखों को झूठा जानकर त्याग दिया तथा उन्होंने एक ऐसे रास्ते को ढूंढ निकाला जिस पर चलने से निश्चित ही सुख की प्राप्ति होती है।

वैसे सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए भगवान महावीर ने राज्यवैभव को छोड़ा, ज्ञानोपार्जन किया तथा कथनी व करनी में साम्यता रखते हुए लोगों को समझाया कि संसारी सुख सच्चे सुख नहीं हैं। सच्चे सुख को प्राप्त करना है तो पुरुषार्थ करो, क्षणमात्र का भी प्रमाद मत करो। भगवान महावीर ने तप व संयम के द्वारा जीवन को सफल बनाने का मार्ग बताया। साथ ही पाँच महाव्रतों को धारण करने पर विशेष जोर दिया उसमें पहला व्रत अहिंसा का है। जीवों की हिंसा नही करने का आदेश होते हुए महावीर ने आक्रोषवश घायल करना अधिक बोझ भार मरवा अथवा समय पर जानवरों को पूरा खाना पानी नहीं देना भी पाप बतलाया है। मन, वचन अथवा काया से प्राणीमात्र को दुख पहुँचाना इन सबको भगवान ने हिंसा में बताता है।

दूसरे व्रत में सत्य को अपनाने का अनुग्रह करते हुए महावीर ने असत्स दोषारोपण करना, झूठी गवाही देना, झूठे लेख लिखना असत्य उपदेश देना आदि से दूर रहने का आदेश दिया।

भगवान महावीर ने तीसरे व्रत में चोरी न करने का उपदेश दिगा तथा चोर की चुराई हुई वस्तु को खरीदना, चोर को सहायता देना राजविरुद्ध काम करना, कम तोलना, कम नापकर देना तथा हल्की वस्तु में अच्छी वस्तु या अच्छी वस्तु में हल्की वस्तु की मिलावट करना भी चोरी का ही अंग बतलाया।

चौथे व्रत में ब्रह्मचर्य पर जोर देते हुए भगवान ने नियमित शीलमय जीवन विताने का आदेश दिया। बड़ी उम्र वाली को माता, बराबर उम्र वाली को बहिन, तथा छोटी उम्र वाली को कन्या मानने का उपदेश इसमें निहित है। परिवार नियोजन का सबसे बड़ा अस्त्र ब्रह्मचर्य बतलाया।

अंतिम महाव्रत में अपरिग्रह का उपदेश दिया। आपने संग्रहवृत्ति को अशांति का कारण बतलाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के इस भौतिक युग में भी जो मानव भगवान महावीर के सिद्धाँतों को यथाशक्ति पालन करते हैं वे सुखी हैं। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। साथ ही कोर्ट, जेल, शासकीय कार्यालय आदि का मुँह नहीं देखना पड़ता है।

भगवान महावीर के २५०० व परिनिर्वाण वर्ष के संदर्भ में हम आशा करते हैं कि भगवान महावीर के सिद्धान्तों पर अमल करते हुए तप और संयम द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने तथा वीर वाणी की उपादेयता सच्चे अर्थों में आत्म सात करेंगे।

क्षणिकायें

महावीर का नाम
सौ बार उचारने के बजाय
महावीर प्रणीत—
एकाधा आचरण
जीवन में उतार लें
भव-परव
संवार लें

वह
महावीर की देशना थी
कि आदमी
देवता के भेष में
मिलते थे।···
अब हम और न भूलें
और
इतना ही याद रखें
आदमी है—
कम से कम
आदमी का भेष रख !

—सुरेश 'सरल'

हे महावीर !
तुम दिगम्बर होकर भी
सत्य, प्रेम, औ'—
अहिंसा के
दिव्य वस्त्रों से
विभूषित हो,
और हम,
नख-शिख तक
असत्य, घृणा, औ'—
हिंसा के
वस्त्राभूषणों से
अलंकृत होकर भी
नग्न हैं,
कामी हैं !!!

—आनन्द बिल्थरे

अशोक कुमार जैन
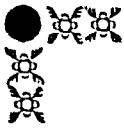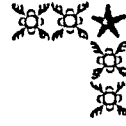
जैन धर्म

विज्ञान की कसौटी पर

क्या जैन धर्म की महानता इस बात से ही सिद्ध हो जाती है कि उसकी कुछ बातें आधुनिक भौतिक नियमों से मेल रही हैं ?

विज्ञान क्या है

साधारणतया 'विज्ञान' शब्द का जो अर्थ आज जनसाधारण में लोकप्रिय है, वह वास्तव में 'विज्ञान' शब्द के भाव से परे है, यही कारण है कि आज घोर अध्यात्मवाद में डूबे हुए साधु विज्ञान की खोजों की आँख बन्द करके बुराई कर रहे हैं। जनसाधारण, जो वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये अनेकों मनोरंजनों एवं आधुनिक ऐशो-आराम के साधनों में मग्न है, जब सच्चा सुख और शांति नहीं प्राप्त करता है तो वह भी इन साधुओं की बातों में दिलचस्पी लेने लगता है, लेकिन भोग विलास के इन आधुनिक वैज्ञानिक साधनों को बिना छोड़े।

जिनके मन जिज्ञासु थे, उन्होंने प्रकृति पर अपनी नजर दौड़ाई, इसमें हो रहे परिवर्तनों के ऊपर नियम बनाये, उन नियमों को सत्य सिद्ध किया और फिर जनता की आवश्यकता अनुसार नये-नये उपयोगी उपकरणों का आविष्कार किया यही तो विज्ञान है, पहले ज्ञान प्राप्त करना, मूल नियमों को जानना और फिर उन भौतिक नियमों का उपयोग करते हुए आवश्यक साधनों का निर्माण करना।

जब हम 'जैनधर्म—विज्ञान की कसौटी पर' इस विषय पर थोड़ा सोचते हैं तो एक बात अटकती है। 'जैन' शब्द को थोड़ी देर के लिए अगर भूल जाये तो विषय रह जाता है 'धर्म-विज्ञान की कसौटी पर' यहाँ धर्म और विज्ञान में मौलिक अन्तर पैदा हो गया है विज्ञान कभी 'व्यक्तिवाद' अथवा परम्परागत चले आ रहे नियमों उपनियमों पर नहीं चलता सौ वर्ष पूर्व जिस व्यक्ति (वैज्ञानिक) ने अपने अनुभवों के आधार पर जो कुछ भी कहा उसे विज्ञान ने एकदम सत्य नहीं माना, बल्कि प्रक्रिया कुछ यूँ

चली कि उस समय प्रयोगिक उपकरणों के अभाव में उस सिद्धान्त को सत्य मान लिया गया, किन्तु उस पर खोज चलती रही, बिना प्रमाण के किसी सिद्धांत को इसलिए मान लेना कि अमुक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने यह बात कही है, विज्ञान के सिद्धांत में नहीं आता, जब तक उस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण न मिल जाये, वैज्ञानिक की खोज जारी ही रहती है।

लेकिन यह बात धर्म में दिखाई नहीं पड़ती, धर्म को शाश्वत कहा जाता है यानि कि काल निरपेक्ष अतः जो नियम-उपनियम एक बार शास्त्रों में लिख दिये गये, वही सनातन है। विज्ञान इस बात को नहीं मान सकता, यह कहना कि अमुक ऋषि पूर्ण ज्ञानी थे, केवल ज्ञानी थे, तीनों लोकों और तीनों कालों के ज्ञाता थे अतः ये शास्त्र तो समय के साथ गलत हो ही नहीं सकते आदि-आदि तथ्य विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

जो धर्म यह सिखाता है कि जिज्ञासु बनो जो कुछ तुमने इस ग्रन्थ में पढ़ा है, उस पर विचार, मनन और प्रयोग कर उसे आगे समाज की आवश्यकतानुसार बढ़ाओ, वही धर्म अथवा दर्शन विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरेगा।

विज्ञान और धर्म एक दूसरे के पूरक हैं अगर हम यह कहें कि 'विज्ञान-धर्म की कसौटी पर' तो भी ठीक होगा। वैज्ञानिक खोजें विनाश न करके रचना करें, अमगल न करके मंगल करें, योगी न बनाकर योगी बनाये आदि बातों से युक्त ही तो वह विज्ञान धर्म सम्मत कहा जायेगा वास्तव में धर्म और विज्ञान एक-दूसरे की पारस्परिक कसौटी पर खरे उतरने चाहिए।

जैनधर्म :—

जैनधर्म के स्थान पर जैन दर्शन शब्द उपयुक्त रहेगा। आधुनिक खोजों के अनुसार तो यह धर्म करोड़ों वर्ष प्राचीन है। शायद आदि से ही लेकिन जो सामग्री साहित्य आदि मिलता है वह महावीर भगवान के समय का मिलता है। आज जो कुछ भी जैन-दर्शन का तत्व है। वह अधिकांश महावीर भगवान द्वारा ही निर्दिष्ट है।

आज कुछ जैन विद्वान (जो विज्ञान शून्य है) अक्सर प्रस्तुत विषय पर जब लिखते हैं तो वे कुछ जैन-सिद्धान्तों की तुलना आधुनिक भौतिक नियमों से करने लगते हैं। उदाहरणार्थ अनेकान्त, स्याद्वाद, आदि की आइंसटीन के सापेक्षवाद से, स्कन्द परमाणु आदि की विवेचना की तुलना आधुनिक परमाणु भौतिकी से, एवं अन्य अनेकों पुद्गल सम्बन्धित सिद्धान्तों को भौतिक सिद्धान्तों से तुलना करके एक हास्यस्पद स्थिति

ैदा कर दी है। इस विषय पर विस्तार से लिखना सम्भव नहीं है। सोचने की वात है कि क्या जैन-धर्म की महानता इस बात से ही सिद्ध हो जाती है कि उसकी कुछ बातें आधुनिक भौतिक नियमों से मेल खा रही है (या जवरदस्ती तुलना कर दी गई है) अब जबकि यही विज्ञान आशा से से कहीं ऊपर उन्नति कर चुका है तो क्या जैन धर्म की महानता कम नहीं हो गई ?

इनसे कोई कहे कि अंतरिक्ष विज्ञान को जैन धर्म में ढूँढो जाकर 'तिलोयपड़ति को' उठा लायेंगे और दुहाई देंगे कि ये सही है और आज का अँतरिक्ष विज्ञान और चांद पर पहुँचना आदि कपोल कल्पित है, कुछ विद्वानों ने इस तिलोयपणति की तुलना आधुनिक अँतरिक्ष से करके जवरदस्ती यह दिखाने की कोशिश की कि यह ग्रंथ इस कसौटी पर सही उतरता है ? विस्तार से लिखना असम्भव है। जिज्ञासु पाठक वह ग्रंथ देख लें और जान लें कि इस तरह की बातें लिखकर कागज को बर्बाद ही किया है। (भगवान महावीर और उनका तत्वदर्शन—पृष्ठ ५३' जैन भूगोल का कुछ समन्वय)

वास्तव में इस तरह की बातें धर्म में नहीं आती, ये सब आचार्यो की कल्पना है, मनोरंजन का विषय है, इसमें विज्ञान कहां ? जिन आचार्यों के ग्रंथ आज उपलब्ध है वे महावीर के बहुत बाद में हुए हैं, वे सब कवि थे। वास्तव में उन्होंने जो कुछ अपने पूर्वजों से सुना (जो कहानी मात्र था) उसमें अपनी काव्य प्रतिभा से कल्पना का मिश्रण कर लिख डाला। उस समय अंतरिक्ष को जानने के उपकरण ही कहाँ थे, जो वे तीन लोक का सार लिखते स्वयं जो महावीर ने कहा था—वह आज उपलब्ध नहीं है केवल कुछ मोटे-मूल सिद्धांत हैं जो विज्ञान की कसौटी पर सही उतरते हैं

भगवान महावीर ने अहिंसा और त्याग प्रवृत्ति पर बल दिया था। आइए, इसे विज्ञान की दृष्टि से देखें।

क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धाँत आदि-अनन्त हैं। हिंसा से एक ही क्रिया होती है— दूसरे जीव को दुख पहुँचाना। इसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। यह विज्ञान का नियम है महावीर ने तभी तो इस सिद्धांत को पुनः प्रतिपादित किया कि जो व्यवहार तुम दूसरों के साथ करोगे (क्रिया) ठीक वैसा ही व्यवहार उनकी तरफ होने वाला है (प्रतिक्रिया) यह इस जन्म में ही या अगले जन्म में। अतः मन 'वचन' कार्य हिंसा मत करो। यह एक वैज्ञानिक धार्मिक सिद्धांत हुआ।

आज जैन धर्म अहिंसा का सबसे

बडा प्रचारक समझा जाता है। यह धर्म पूर्णतया लाल निरपेक्ष है। त्याग की भावना रखना भी पूर्णतया वैज्ञानिक है। जब मनुष्य में भोग और तृष्णा की ज्वाला उठती, तो न उचित वितरण होता है न उत्पादन। कुछ व्यक्ति भूखे पेट सोते हैं, कुछ अनाज पैरों तले कुचल कर। विज्ञान कहता है कि उत्पादन और वितरण में एकरूपता नहीं होगी तो विषमता फैलेगी यह समस्या अपरिग्रह, त्याग, सत्य आदि जैन—सिद्धांतों से सुलझ सकती है। जब हम पांच अणुव्रतों आदि की बात करते हैं तो उनसे यही मतलब होता है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर समाज में अव्यवस्था फैलने से रोकें। यह यह उसका धर्म हुआ। इसमें समाज रचना में विकास होगा—यह इसमें छिपा विज्ञान हुआ तब हम कहेंगे कि ये सिद्धांत वैज्ञानिक हैं यानि कि प्रयोगसिद्ध है। किसी व्यक्तिवादी न होकर प्रकृतिवादि हैं, शाश्वत है।

जैन धर्म का मूल रूप है आत्मा का सच्चा रूप जानना। आत्मा क्या है। विज्ञान उसके विषय में क्या सोच रहा है, यह एक शोध का विषय है अब तक जो कुछ आत्मा के विषय में लिखा गया है जो कुछ हमारे शास्त्र कहते हैं अगर वही सब कुछ पूर्ण मानकर जिज्ञासा को दबाकर उसी परम्परागत ठर्रे पर चलते रहे तो हमारा यह आत्म-कल्याण वाला धार्मिक सिद्धान्त अवैज्ञानिक रह जायेगा। वास्तव में यह विज्ञान की कसौटी पर सही उतरेगा, मगर उस तरह नहीं जैसे आजकल है, विज्ञान की दृष्टि में आत्मा का कल्याण सब तरह के कर्मों का नाश करके हो जाता है, बिल्कुल सारहीन है, पहले तो कर्म को ही समझना पड़ेगा। एक जगह बैठकर, निष्कर्म होकर, समाज से एकदम अलग होकर घोर शारीरिक कष्ट सहते हुए तीनों कालों और लोकों का ज्ञान हो जाए, यह विज्ञान नहीं मान सकता। विज्ञान तो तब मानेगा जब कोई उसे करके दिखाये, आज जो हमारे साधु-मुनि आदि है वे जरा सोचें कि उन्होंने आत्मा का कितना अधिक उद्धार कर लिया है।

कपोल कल्पित अनेकों द्वीपों, समुद्रों, सिद्धशिलाओं, आदि २ मनोरंजक बातों से समाज मूर्ख बन सकता है, एक वैज्ञानिक नहीं, कोई इन साधुओं से पूछे कि भई इन अजीबो-गरीब पर्वतों, द्वीपों को दिखाओ तो सही तो उत्तर मिलेगा, "अरे, इस हीन मानव दशा में सब प्रकार के कर्मों को लिये तू वहाँ स्वर्ग तुल्य लोक में जा पायेगा, वहां तो देव निवास है। उसके लिये तो घोर तप कर मुनि बनना पड़ेगा।"

आज अगर वैज्ञानिक एकांत में बैठकर लीन हो जाते तो क्या वे चांद पर पहुँच पाते! कर्म करना विज्ञान का सिद्धांत है, आज जो कुछ उपलब्ध है, कल उससे अधिक हो।

भगवान महावीर ने जो आत्म-तत्त्व दिया होगा वह अवश्य ही विज्ञान सम्मत होगा, क्योंकि तभी वह इतिहास पुरुष बन पाये।

जैन-धर्म में आत्मा का जो रूप है वह विज्ञान की कसौटी पर अभी विचारणीय है, शायद भविष्य में कोई तथ्य सामने आ सके, यह सोचना कि जो कुछ हमारे ग्रन्थों में लिखा हैं, शास्त्रों में लिखा है, वही शाश्वत है, चाहे विज्ञान कितना भी क्यों न शोध कर ले, यह बदलने वाला नहीं है, गलत है।

दो हजार साल से हमारे आचार्यों ने जैन सिद्धांतों को कल्पना के साथ जोड़कर हमारे सम्मुख इस प्रकार रखा है कि अगर उसकी आलोचना की गई तो पाप लगेगा यह विज्ञान का नियम नहीं है, जैन धर्म को विज्ञान की कसौटी पर तभी परखा जा सकता है। जब इन आचार्यों की तानाशाही खत्म हो हर ग्रन्थ की आलोचना करने का पूर्ण अधिकार हो,[१] और जो कुछ भी नया लिखा जाये वह पहले से अधिक स्पष्ट प्रयोग सिद्ध और जन-प्रिय हो जैन ग्रंथों के प्रति ऐसी बात नहीं है, जिन व्यक्तियों ने इसकी तुलना आधुनिक विज्ञान से की है, वे यह भूल गए है कि आज का विज्ञान इस तुलना की दृष्टि से बहुत आगे निकल चुका है, ये सिद्धांत तो अब बच्चों के लिए रह गये है।

अतः जैन धर्म को हम वैज्ञानिक कसौटी पर कसें, इससे पहले स्वतंत्र स्वाध्याय की बहुत आवश्यकता है, अपनी बुद्धि का भी उपयोग करे, विज्ञान की खोजों में यही तो होता है, जो शोध कार्य आज हुआ, कल का शोध कार्य पहले से अधिक उन्नत होगा. यह बात जैन धर्म के सिद्धांतों के बारे में भी होनी चाहिये, कुछ नियम अटल होते है, उन नियमों के आधार पर जो पूरा धर्म और समाज का ढांचा खड़ा होता है, उसमें निरन्तर विकास की आवश्यकता है, यह विज्ञान का धार्मिक रूप होगा या धर्म का वैज्ञानिक रूप होगा, दोनों एक ही बात है।

---

१. देखिए—'भगवान महावीर' और उनका तत्व दर्शन—ग्रंथ पृष्ठ ३ पर श्री सुमेरचन्द दिवाकर जी ने लिखा है कि "महापुरुष की रचना की समालोचना अथवा आचार्यों के श्रेष्ठ श्रम का साधारण मनुष्य क्या मूल्यांकन करेगा ? यथार्थ में यह ग्रंथ शिरसा वन्दनीय और शिरोधार्य होते है" एक अवैज्ञानिक बात है, अगर विज्ञान उसी सिद्धांत पर चलता तो हम 'न्यूटन' से आगे न बढ़ पाते।

भगवान महावीर के धर्म की मौलिक विशेषताएँ

◆ डा० ज्योति प्रसाद जैन (लखनऊ)

समस्त आत्मिक विकारों पर पूर्णतया विजय प्राप्त करने वाले महान आध्यात्मिक विजेता 'जिन' या 'जिनेन्द्र' कहलाते हैं और दुःखपूर्ण जन्म-मरण रूप संसार सागर से पार करने वाले सुखद धर्मतीर्थ की स्थापना एवं प्रवर्तन करने के कारण वे 'तीर्थंकर' कहलाते हैं। उन श्रमण तीर्थंकरों या जिन देवों द्वारा स्वयं आचरित एवं सर्व सत्वानी हिताय सुखाय उपदेशित धर्म व्यवस्था का नाम ही जैन धर्म है। ये श्रमण तीर्थंकर चौबीस हुए हैं जिनमें आद्य ऋषभ देव तथा चौबीसवें व अन्तिम वर्द्धमान महवीर (५९९-५२७ ई०पू०) थे जिनका ढाई सहस्त्रवां निर्वाण महोत्सव अब सोल्लास मनाया जा रहा है।

जैन धर्म और उसकी श्रमण संस्कृति विशुद्ध भारतीय हैं। यह धर्म परम्परा भारतीय संस्कृति की उस अत्यन्त प्राचीन श्रमण धारा का प्राचीनतम जीवित प्रतिनिधि मानी जाती है जो मूलतः अवैदिक थी और सम्भवतया अनार्य एवं प्रागार्य भी थी। उसका सीधा सम्वन्ध भारतवर्ष के मध्य प्रदेश की आद्य मानव परम्परा एवं वेदकालीन व्रात्य क्षत्रियों की प्राचीन मागध संस्कृति से है।

यह धार्मिक परम्परा स्वयं में सर्वांगपूर्ण है तथा वह तत्वज्ञान, दर्शन, आचार शास्त्र, पौराणिक अनुश्रुतियां, उपास्य इष्ट देवादि, धर्मायतन, धर्म गुरु, धर्म शास्त्र, तीर्थ स्थान, धार्मिक पर्व, आदि एक अत्यन्त विकसित धर्म के समस्त अंगों से समन्वित हैं। जैन धर्म की प्राचीनता, मौलिकता एवं स्वतन्त्र सत्ता विद्वजगत में सर्वमान्य हो चुकी है।

जैन मान्यतानुसार यह चराचर विश्व अनादि-निधन एवं शाश्वत है और अपने नियमों से स्वतः नियन्त्रित है। इसका न कोई सृष्टा है, न नियन्ता है, न पालन करता है न विनाश कर्ता है। यह विश्व सत् रूप है और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन उत्पाद-व्यय-द्रव्यात्मक सतस्य छः

द्रव्यों से निर्मित है । वे ही उसके उपादान हैं, उन्हीं के समुदाय का नाम लोक विश्व या जगत है ।

लोक में विद्यमान जो अनन्तानन्त जीवावात्माएँ हैं उनके दो भेद हैं एक मुक्त आत्मा, दूसरी संसारी आत्मा, जिन आत्माओं ने मनुष्यदेह में स्वपुरुषार्थ द्वारा परम प्रातव्य प्राप्त कर लिया है, वे अर्हत केवलि कहलाते हैं । वह आत्मा भी परमात्मा बन जाती है । यह अर्हत् परमात्मा ही तदनन्तर उसी भव में निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करके अशरीरी, अरूपी, निर्विकार, निराकार, शुद्ध-बुद्ध, सचिदानन्द, चेतन्यपिण्ड स्वरूप सिद्धत्व को प्राप्त होते हैं और मुक्त आत्माएँ कहलाते हैं । जैन धर्म में ये क्रान्ति और सिद्ध ही परम उपास्य हैं । वे संसार सागर से पार हो चुके हैं । उनमें फिर कभी नहीं लौटते । उनके अतिरिक्त शेष समस्त जीव जन्म मरणरूप आवागमन के चक्कर में फँसे हुए संसारभ्रमण करते रहते हैं और अपने मोह एवं अज्ञान के कारण नाना प्रकार के दुख भोगते रहते हैं ।

उनके इस दुख रूप संसार से छुटकारा पाने का नाम ही मोक्ष या निर्वाण है और इस मुक्ति का मार्ग सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र रूप रत्नत्रय है । वस्तु स्वरूप का समीचीन ज्ञान, उसका समीचीन दृढ़ श्रद्धान एवं तदनुकूल समीचीन आचरण करने में ही जैन विहित मुक्तिपथ या मोक्ष मार्ग निहित है ।

जैन धर्म निवृत्ति प्रधान है, अथवा यह कहें कि वह अध्यात्म प्रधान है । दोनों का अभिप्राय एक ही है अर्थात् संसार-देह-भोगों में, समस्त बाह्य पदार्थों में दौड़ती रहने वाली प्रवृत्तियों को रोककर उन्हें आत्ममय करना, बहिर्मुखी के स्थान में अन्तर्मुखी बनाना । आत्मशोधन उसका साधन है, पूर्ण सिद्धान्त् उसका साध्य है, तप त्याग संयम भक्ति आदि उसके साधक हैं । आत्मोपलब्धि का सर्वोत्कृष्ट उपाय शुद्धात्मा का निरावलम्बध्यान, आत्मानुभूति, आत्मलीनता, आत्मत्यता है । किन्तु यह महान आध्यात्मिक योगियों के लिए ही शक्य है । अतएव सामान्य मुमुक्षु सावलम्ब ध्यान की प्रतिक्रियाओं द्वारा पथ पर अग्रसर होते हैं । जिस समय वह भी नही कर पाते तब संयम त्याग आदि रूप धर्माचरण में प्रयुक्त रहते हैं ।

जैन दृष्टि से वस्तु स्वभाव का नाम ही धर्म है । जो जिस वस्तु का परानपेक्ष स्वभाव है वही उसका धर्म है । इस चैतन्य विशिष्ठ जीव या आत्मा का धर्म अथवा शान्त निराकुलता है, ज्ञान और दर्शन है । वाह्याचार में वह स्वभाव क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य और

ब्रह्मचर्य के रूप में प्रकट होता है। एक शब्द में कोई तो अहिंसामयी है और व्यक्ति की अहिंसा प्रवृतियों में ही लक्षित होती है। राग, द्वेष, मोह, भय, क्रोध, घृणा, लोभ और तृष्णा, मान, मायाचारी, विषय लोलुपता, आदि आत्मा के विकार हैं। वे पर निमित्तक हैं। उनके स्वभाव नहीं हैं, अतएव अधर्म हैं। उनसे आप्मा् की निवृत्ति करना ही अतम धर्म का पालन करना है।

स्थूल रूप से जैन धर्म की छः प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार हैं—

आत्मिक साम्यवाद :—

विश्व में जितने भी प्राणी हैं वे सब आत्मविशिष्ट हैं और उनकी सबकी आत्माएँ अपने स्वरूप, स्वभाव एवं निहित शक्ति की दृष्टि से परस्पर में सर्वथा समान हैं। लिंग, धर्म, जाति, गति, योनि, ऊँच-नीच आदि का कोई भेद एक आत्मा को दूसरी आत्मा से, एक प्राणी को दूसरे प्राणी से, भिन्न नहीं करता। सब हमारे समान हैं और हम सबके समान हैं।

व्यक्तिवाद—

आत्म कल्याण के मार्ग में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र एवं स्वनिर्भर है, कोई भी अन्य व्यक्ति या शक्ति उसमें साधक या बाधक मात्र उपचार से हो जाता है, वास्तव में व्यक्ति का स्वयं का पुरुषार्थ ही उसमें सहायक होता है।

आशावाद

कितनी ही क्षुद्रतम एवं निकृष्टतम अवस्था या परिस्थिति में कोई प्राणी किसी समय क्यों न हो, यदि वह दृढ़ निश्चय कर लें और पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ आत्मोन्नति में तत्पर हो जाए तो संसार की कोई भी शक्ति उसके आत्मोत्कर्ष एवं आत्म कल्याण को नहीं रोक सकती, क्योंकि प्रत्येक प्राणी में परमात्मत्व प्राप्त करने की शक्ति समान रूप से अन्तर्हित है और उसको व्यक्ति करने में वह ही स्वयं समर्थ है।

परीक्षा प्रधानता या मुक्तिवाद मानसिक दासत्व का विरोधी है और आग्रह करता है कि प्रत्येक तथ्य को युक्ति और प्रमाण द्वारा भली प्रकार परखकर ग्रहण करें।

स्याद्‌वाद या अनेकान्तवाद के द्वारा जैन दर्शन यह प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक वस्तु अनन्त-धर्मात्मक है, उसके अनेक पहलू हैं। किसी एक पक्ष से ही उस पर विचार करके उसी पक्ष को सत्य मान बैठना कदाग्रह है, एकान्त

ई और मिथ्यात्व है अतः सभी सम्यक दृष्टिकोणों से उस पर विचार करना आवश्यक है। दूसरों के दृष्टिकोण को सहृदयता एवं सहानुभूति के साथ जानने समझने और सराहने की प्रवृत्ति का परम प्रकोप यह स्याद्वाद है। यह व्यक्ति परम को सहिष्णु बना देता है। जैनी नीति या जैनी विचार दृष्टि का सूचक यही स्वादवाद या अनेकान्तवाद हैं।

अहिंसावाद—

आत्मा स्वभावतः पूर्ण अहिंसक है। सभी आत्माएं समान हैं, अपनी अनुभूतियों में भी वे समान रूप से सुख दुःख अनुभव करती हैं अतः जिसे हम अपने लिए दुखद, कष्टकर, एवं अनिष्टकारी समझते हैं उसे दूसरों के लिए भी वैसा ही समझें और उससे विरत हों। स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो। किसी भी प्राणी के मन या शरीर को अपने मन वचन या शरीर को किसी क्रिया द्वारा स्वयं करके दूसरों से कराके, अथवा करने वाले का अनुमोदन करके, कष्ट न पहुचाओ, मानव-मानव में परस्पर सौहार्द स्थापित करने वाली और विश्व में स्थाई शांति का साम्राज्य प्रसारितने वाली यह जैनी जीवन दृष्टि है। समस्त जैनाधार इस अहिंसा द्धिति पर ही आधारित है।

अस्तु वर्द्धमान महावीर के धर्म को अति संक्षेप में विवेचित उपरोक्त पीठिका और अन्त में परिगणित उसकी छः प्रमुख विशेषताएं उसे एक मानवतापूर्ण लोक कल्याणकारी धर्म सूचित करते हैं।

महावीर उद्दिष्ट मुक्ति का मार्ग

वह मुक्ति मार्ग यह है—

"आतम के अहित विषय कषाय।
इनमें मेरी परिणति न जाय।।

अर्थात्—विषय (इन्द्रिय विषयों में सुख की भ्रांति-मिथ्यात्व भाव) और कषाय (क्रोधादिक भाव) आत्मा (जीव) को अहित (दुःखी, पराधीन) करने वाले हैं अतएव इनमें अपनी परणति (मन, वचन, काय की प्रवृति) मत होने दो।

मुमुक्षु जीव की जिज्ञासायें तीन हैं—

१. मैं कौन हूं। २. क्या हो रहा हूं ३. क्या हो सकता हूं। इनका उत्तर एक गाथा में हैं—

"जीवो कुव ओ गम ओ
अमुक्ति कता सदेह परिमाणो।
भोला संसार ह्यो सिद्धो
सो विस्स सोढ़ गई।।

अर्थात्—

(१) तू जीव है (पुदगल नहीं हैं), अमूर्तिक है। ज्ञायक स्वभाव वाला है जोकि सुख का मूल है।

(२) तू अनादि काल से सुख मूल ज्ञायक पने को भूलकर पुदगल में सुख मान बैठा। रागी क्रिया का कर्ता वन बैठा। अतः तू संसारी हो रहा है।

(३) यदि तू सहज प्राप्त कर्मों को निष्कामना पूर्वक करे तो जैसा कर तैसा सिद्ध होकर अपने उर्ध्व-गमन स्वभाव के कारण सुखी स्वाधीन हो सकता है। मुक्त हो सकता है।

— श्री दौलतराम मिश्र

डा० हुक्मचन्द भारिल्ल

धार्मिक सहिष्णुता और तीर्थंकर महावीर

सह-अस्तित्व की पहली शर्त है सहिष्णुता। सहिष्णुता के बिना सह-अस्तित्व संभव नहीं है। संसार में अनन्त प्राणी है और उन्हें इस लोक में साथ-साथ ही रहना है। यदि हम सबने एक-दूसरे के अस्तित्व को चुनौती दिए बिना रहना नहीं सीखा तो हमें निरन्तर अस्तित्व के संघर्ष में जुटे रहना होगा। संघर्ष अशांति का कारण है और उसमें हिंसा अनिवार्य है। हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म देती है। इस प्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा का कभी समाप्त न होनेवाला चक्र चलता रहता है। यदि हम शांति से रहना चाहते हैं तो हमें दूसरों के अस्तित्व के प्रति सहनशील बनना होगा। सहनशीलता सहिष्णुता का ही पर्याय है।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने प्रत्येक वस्तु की पूर्ण स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है और यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्येक वस्तु स्वयं परिणमनशील है, उसके परिणमन में पर-पदार्थ का कोई हस्तक्षेप नहीं है। यहाँ तक कि परम-पिता परमेश्वर भी उसकी सत्ता का कर्ता-हर्ता नहीं है। जन-जन की ही नहीं, अपितु कण-कण की स्वतन्त्रता सत्ता की उद्घोषणा तीर्थंकर महावीर की वाणी में हुई। दूसरों के परिणमन या कार्य में हस्तक्षेप करने की भावना ही मिथ्या, निष्फल और दुःख का कारण है क्योंकि सब जीवों का जीवन-मरण, सुख-दुःख स्वयंकृत व स्वयंकृत कर्म का फल है। एक को दूसरों के दुःख-सुख, जीवन-मरण का कर्ता मानना अज्ञान है, सो ही कहा है :—

> सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय,
> कर्मोदयान्मरण जीवित दुःख सौख्यम्।
> अज्ञान मेतदिह यत्तु परः परस्य,
> कुर्यात्पुमान्मरण जीवित दुःख सौख्यम्॥

यदि एक प्राणी को दूसरे के सुख-दुख और जीवन-मरण का कर्ता माना जाय जो फिर स्वयंकृत शुभाशुभ कर्म निष्फल साबित होंगे। क्योंकि प्रश्न यह है कि हम बुरे कर्म करें और काई दूसरा व्यक्ति चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, क्या हमें सुखी कर सकता है ? इसी प्रकार हम अच्छे कार्य करें और कोई व्यक्ति चाहे वह ईश्वर ही क्यों न हो, क्या हमारा बुरा कर सकता है ? यदि हां, तो फिर अच्छे कार्य करना और बुरे कार्यों से डरना व्यर्थ है। क्योंकि उनके फल को भोगना आवश्यक तो नहीं ? और यदि यह सही है कि हमें अपने अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना ही होगा तो फिर पर के हस्तक्षेप की कल्पना निरर्थक है। इसी बात को अमितगति आचार्य ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

स्वयं कृतः कर्म यदात्मनापुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,
न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचार यन्नेवमनन्य मानसः,
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीं॥

अतः सिद्ध है कि किसी द्रव्य में पर का हस्तक्षेप नहीं चलता। हस्तक्षेप की भावना ही आक्रमण को प्रोत्साहित करती है। यदि हम अपने मन से पर में हस्तक्षेप करने की भावना निकाल दें तो फिर हमारे मानस में सहज ही अनाक्रमण का भाव जग जायगा। आक्रमण प्रत्याक्रमण को जन्म देता है। यह आक्रमण प्रत्याक्रमण की स्थिति ऐसे युद्ध को प्रोत्साहित कर सकती है जिससे मात्र विश्व शांति ही खतरे में न पड़ जाय, अपितु विश्व-प्रलय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अतः विश्व-शांति की कामना करने वालों को तीर्थंकर महावीर द्वारा बताये गये अहस्तक्षेप, अनाक्रमण और सह-अस्तित्व के मार्ग पर चलना आवश्यक है, इसमें सबका हित निहित है।

आचार्य समन्तभद्र ने भगवान महावीर के धर्मतीर्थ को सर्वोदय तीर्थ कहा है :—

सर्वान्तवत् तद्गुण मुख्यकल्पम्,
सर्वान्तशून्यं च मिथोनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तम्,
सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ।।

धर्म के सर्वोदय स्वरूप का तात्पर्य सर्व जीव समभाव, सर्वधर्म समभाव, और सर्वजाति समभाव से है। सबका उदय वही सर्वोदय है। अर्थात् सब जीवों को उन्नति के समान अवसरों की उपलब्धिही सर्वोदय है। दूसरों का बुरा चाहकर कोई अपना भला नहीं कर सकता है।

आज हमने मानव-मानव के बीच अनेक दीवारें खड़ी कर ली हैं। ये दीवारें प्राकृतिक न होकर हमारे ही द्वारा खड़ी की गई हैं। ये दीवारें रंग-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, कुल-भेद, देश व प्रान्त-भेद आदि की है। यही कारण है कि आज सारे विश्व में एक तनाव का वातावरण है। एक देश दूसरे देश से शंकित है और एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से। यहां तक कि मानव-मानव की ही नहीं, एक प्राणी दूसरे प्राणी की इच्छा और आकांक्षाओं को अविश्वास की दृष्टि से देखता है भले ही वे परस्पर एक-दूसरे से पूर्णतः असंपृक्त ही क्यों न हों, पर एक-दूसरे के लक्ष्य से एक विशेष प्रकार का तनाव लेकर जी रहे हैं। तनाव से सारे विश्व का वातावरण एक घुटन का वातावरण बन रहा है।

वास्तविक धर्म वह है जो इस तनाव व घुटन को समाप्त करे या कम करे। तनावों से वातावरण विषाक्त बनता है और विषाक्त वातावरण मानसिक शांति भंग कर देता है। तीर्थंकर महावीर की पूर्वकालीन एवं समकालीन परिस्थितियाँ भी सब कुछ मिलाकर इसी प्रकार की थीं।

तीर्थंकर महावीर के मानस में आत्मकल्याण के साथ-साथ विश्वकल्याण की प्रेरणा भी थी, और इसी प्रेरणा ने उन्हें तीर्थंकर बनाया। उनका सर्वोदय तीर्थ आज भी उतना ही ग्राह्य, ताजा और प्रेरणास्पद है जितना उनके समय में था। उनके तीर्थ में न संकीर्णता थी और न मानवकृत सीमायें। जीवन की जिस धारा को वे मानव के लिए प्रवाहित करना चाहते थे, वही वस्तुतः सनातन सत्य है।

धार्मिक जड़ता और आर्थिक अपव्यय को रोकने के लिए महावीर ने क्रियाकाण्ड और यज्ञों का विरोध किया। आदमी को आदमी के निकट लाने के लिए वर्ण-व्यवस्था को कर्म के आधार पर बताया। जीवन जीने के लिए

अनेकान्त की भाव-भूमि, स्याद्वाद की भाषा और अणुव्रत का आचार-व्यवहार दिया और मानव व्यक्तित्व के चरम विकास के लिए कहा कि ईश्वर तुम्हीं हो, अपने आपको पहचानो और ईश्वरीय गुणों का विकास कर ईश्वरत्व को पाओ।

तीर्थंकर महावीर ने जिस सर्वोदय तीर्थ का प्रणयन किया, उसके जिस धर्म तत्त्व को लोक के सामने रखा, उसमें न जाति की सीमा है न क्षेत्र की, और न काल की न रंग, वर्ण, लिंग आदि की। धर्म में संकीर्णता और सीमा नहीं होती। आत्म-धर्म सभी आत्माओं के लिए एक है। धर्म को मात्र मानव से जोड़ना भी एक प्रकार की संकीर्णता है, वह तो प्राणी मात्र का धर्म है। 'मानव धर्म' शब्द भी पूर्ण उदारता का सूचक नहीं है, वह भी धर्म के क्षेत्र को मानव समाज तक ही सीमित करता है जबकि धर्म का सम्बन्ध समस्त प्राणी जगत से है क्योंकि सभी प्राणी सुख और शाँति से रहना चाहते हैं।

धर्म का सर्वोदय स्वरूप तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि आग्रह समाप्त नहीं हो जाता क्योंकि आग्रह-विग्रह पैदा करता है, प्राणी को असहिष्णु बना देता है। धार्मिक असहिष्णुता से भी विश्व में बहुत कलह व रक्तपात हुआ है, इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब धार्मिक आग्रह सहिष्णुता की सीमा को लाँघ जाता है तो वह अपने प्रचार व प्रसार के लिए हिंसा का आश्रय लेने लगता है। धर्म का यह दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि उसके नाम पर रक्तपात हुए और वह भी उक्त रक्तपात के कारण विश्व में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। इस प्रकार जिस धर्मतत्व के प्रचार के लिए हिंसा अपनाई गई वही हिंसा उसके ह्रास का कारण बनी। किसी का मन तलवार की धार से नहीं पलटा जा सकता। अज्ञान-ज्ञान से कटता है उसे हमने तलवार से काटने का यत्न किया। विश्व में नास्तिकता के प्रचार में इसका बहुत बड़ा हाथ है।

भगवान महावीर ने उक्त तथ्य को भली प्रकार समझा था। अतः उन्होंने साध्य की पवित्रता के साथ-साथ साधन की पवित्रता पर भी पूरा-पूरा जोर दिया एवम् विचार को अनेकान्तात्मक, भाषा को स्याद्वादरूप, आचार को अहिंसात्मक एवम् जीवन को अपरिग्रही बनाने का उपदेश दिया।

अनेकान्तात्मक विचार, स्याद्वादरूपी वाणी, अहिंसात्मक आचार एवं अपरिग्रही जीवन ये चार महान सिद्धान्त तीर्थंकर महावीर की धार्मिक सहिष्णुता के प्रबल प्रमाण हैं।

महावीर और सामाजिक क्रांति
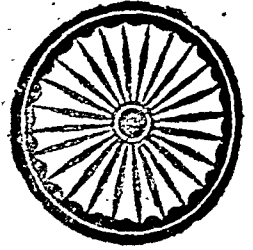
—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

१३ नवम्बर, ७४ से भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। सम्पूर्ण देश में इसके लिए विभिन्न कार्यक्रम निश्चित हो चुके हैं। भारत सरकार एवं राज्य सरकारें भगवान महावीर के आदर्शों के अनुकूल समारोह आयोजित करने का निश्चय कर चुकी हैं अथवा कर रही हैं। राजस्थान सरकार ने इस पूरे वर्ष को अहिंसा वर्ष घोषित किया है। इस एक वर्ष के बीच किसी अपराधी को फाँसी नहीं लगेगी। यही नहीं तीन दिन प्रारम्भ में और तीन दिन अन्त में सारे राज्य में जीव हिंसा बन्द रहेगी। राज्य सरकारें ही नहीं किन्तु देश के समस्त नागरिक भी भगवान महावीर के चरणों में किसी न किसी रूप में श्रद्धांजलि समर्पित करेंगे। इसलिए यह प्रथम अवसर है जब सम्पूर्ण देश बिना किसी भेदभाव एवं साम्प्रदायिक मनोमालिन्य के महाश्रवण महावीर का २५००वां परिनिर्वाण महोत्सव के मनाने में अपना योगदान देगा। हो सकता है इसके पूर्व भी देश में कभी महावीर निर्वाण शताब्दि मनायी हो लेकिन इतने बड़े स्तर पर पहले कभी नहीं हुआ ऐसा हम कह सकते हैं।

भगवान महावीर को १२ वर्ष की तपः साधना एवं केवल के ३० वर्ष पश्चात तक देश के विभिन्न प्रदेशों में विहार करने के उपरान्त निर्वाण प्राप्त हुआ। ३० वर्ष तक सर्वज्ञ महावीर ने देश को विभिन्न क्रान्तियों के माध्यम में नव जीवन एवं नवीन दिशा प्रदान की। उन्होंने देश में अहिंसक क्रान्ति का सूत्रपात किया इसके माध्यम से अहिंसा की प्रधानता को प्रतिष्ठित किया। मानव मात्र को ही नहीं पशु पक्षी को भी जीवन में अहिंसा उतारने पर बल दिया। अहिंसा को धर्म का रूप देकर उसके महत्व को प्रस्तुत किया और जीवन के प्रत्येक कार्य में उसकी आवश्यकता पर जोर दिया। सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति में भी मुख्य रूप से अहिंसा का ही पुट

रहा। उनका अनेकान्त एवं अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्तिका ही तो दूसरा रूप है। अनेकान्त सिद्धान्त के माध्यम से उन्होंने सर्व धर्म समभाव के सिद्धान्त का प्रचार किया। समाज में व्याप्त अशान्ति साम्प्रदायिकता एवं पारस्परिक मनोमालिन्य को समाप्त किया और सब में यह अस्तित्व की भावना को पैदा किया। उनका तीस वर्ष का विहार तीस युगों के बराबर था और यही कारण है कि २५०० वें वर्ष बाद भी महावीर के उन सिद्धान्तों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी उनके युग में थी। ये सिद्धान्त आज भी उतने ही नवीन एवं आकर्षक हैं जितने भगवान महावीर के युग में थे इसलिए इनके २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर देश में उसी सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है।

भगवान महावीर का अनुयायी होने के कारण समस्त जैन समाज का यह एक पावन कर्तव्य है कि वह फिर से समाज में क्रान्ति का शङ्खनाद फूंके और सोई हुई देश की आत्मा को फिर से जगावें। महावीर स्वामी ने अपने समवसरण में आने की सबको छूट ही नहीं दी थी। वहाँ न कोई राजा था और न रंक, उनका समवसरण वर्गहीन था, उनकी धर्म सभा में ऊंच नीच एवं छूतअछुत का कोई भेदभाव ही नही था। जातिवाद का इन्होंने जोरदार विरोध किया था और अपने कार्यों के अनुसार व्यक्ति का मूल्यांकन करने का उपदेश दिया था। उनकी धर्म सभा में जहाँ राजा श्रेणिक था वहां इनके राज्य का छोटा से छोटा मनुष्य भी इन्हीं के साथ बैठा था। यह प्रथम अवसर था जब एक सर्वोच्च धर्माचार्य ने किसी शुद्र को गले लगाया हो और उसे धार्मिक वाणी सुनने का अवसर प्रदान किया हो। लेकिन वर्तमान युग में हम महावीर क अनुयायी होते हुए एवं उनकी शिक्षाओं की विशेषताओं को जानते हुए भी अपने ही साधर्मी बन्धुओं से अलग होते जा रहे हैं। कोई मरे या जीवे हमें अपने धन्धे एवं विलासिता से अवकाश नहीं। इसी कारण जैन समाज धीरे धीरे सिकुड़ता जा रहा है। देश को जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात में उसकी जनसंख्या घट रही है। उसके आदर्शों एवं ईमानदारी में लोगों का विश्वास हटता जा रहा है। इसीलिए सामाजिक क्रान्ति के लिए आज के युग का नारा होना चाहिए सब महावीर के अनुयायी एक हो जावो। यह नारा हमारी सामाजिक क्रान्ति का एक अंक होगा और इसके माध्यम से सारे जैन समाज को एक सूत्र में बांध सकेंगे। लेकिन एक हो जाने वाला नारा किसी राजनीति का प्रेरित नहीं होगा किन्तु शुद्ध सामाजिक

क्रान्ति का सूत्रपात करने वाला होगा। यदि इस वर्ष समस्त जैन समाज अपने मनोमालिन्य एवं परस्परिक झगड़ों को समाप्त कर सके तथा जैन मात्र में अपनी मूल एकता स्थापित कर सकें तभी जाकर हमारा महावीर निर्वाण शताब्दि समारोह मनाना सार्थक होगा।

भगवान महावीर ने अपने पंथ को चार भागों में विभाजित करके सामाजिक क्रान्ति का बिगुल बजाया था। श्रावक एवं श्राविका को अपने संघ में स्थान देकर इन्होंने नैतिकता को उसका आधार बनाया और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के रूप में जीवन में उतारने को आवश्यक बतलाया। महावीर के संघ में जितने श्रावक एवं श्राविकायें थीं वे सब महावीर की देशना सुनकर उनके साथ हो गयी थी। यद्यपि उन्होंने गृहस्थ जीवन का त्याग नहीं किया था लेकिन महवीर भगवान के पास ये इतनी अमूल्य विधि उन्हें प्राप्त हो गई थी कि और सब कुछ उन्हें निरर्थक लगने लगा। वैसे ही जीवन को धारण करने वाले श्रावक एवं श्राविका समाज की आज देश को अत्यधिक आवश्यकता है जिससे हम यह कह सकें कि देश में लाखों में श्रावक श्राविकायें हैं जिनके जीवन में पंचाणुव्रत उतरे हुए हैं और वे देश के किसी भी अनैतिक कार्य में अपना योग नहीं रखते।

लेकिन यह सामाजिक क्रान्ति कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए साधुओं को आगे आना पड़ेगा तथा श्रावक एवं श्राविकाओं को एक दिशा तक जीवन की उश्रृंखलताओं को त्यागना पड़ेगा। आज देश भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट समाज का नव निर्माण करना चाहता है जिसमें कोई भी व्यक्ति देश एवं समाज के हितों की उपेक्षा न कर सके और एक अहिंसक समाज की रचना कर सके। समाजवाद के इस युग में केवल नारों से काम चलने वाला नहीं है किन्तु आज तो मानव मात्र को गले लगाने से पूर्ण अहिंसक समाज का निर्माण करने से तथा पाँच अणुव्रतों को जीवन में उतारने में ही उसकी रचना हो सकेगी। ऐसी सामाजिक क्रान्ति के लिए भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव वर्ष से अच्छा कौन सा वर्ष होगा। यदि इस शताब्दि वर्ष में समस्त जैन समाज अपने भेदों को भुलाकर एक हो सके तथा अपना जीवन भगवान महावीर द्वारा उपादिष्ट वचनों को आधार पर निर्माण कर सके तो देश में सामाजिक क्रान्ति का पुनः सूत्रपात किया जा सकता है और हमारे देश की भी काया पलट की जा सकती है।

तीर्थंकर महावीर का महाभिनिष्क्रमण: अन्तर्ज्ञान की खोज में

— डा० भागचन्द जैन भास्कर, नागपुर

तीर्थङ्कर महावीर इतिहास के अप्रतिम व्यक्तित्वों में अन्यतम थे। उन्होंने समस्त राजकीय भोगोपभोगों का त्याग कर अन्तर्ज्ञान की खोज में महाभिनिस्क्रमण किया। आत्मकल्याण के साथ ही जनकल्याण की भावना उनके पावन हृदय में समायी हुई थी। लगभग तीस वर्ष की अवस्था तक भ० महावीर गृहस्थावस्था में ही रहकर आत्मचिन्तन करते रहे। माता-पिता के स्वर्गवास ने उन्हें और भी आत्मोन्मुखी बना दिया। भेद विज्ञान जागरित होते ही उन्हें संसार की ऐश्वर्यमयी सम्पदा तृणवत् प्रतीत होने लगी। पदार्थ की विनश्वरशीलता का दर्शन उन्हें स्पष्टतर हो गया। वैराग्य की भावना और दृढ़तर हो गई। फलत: उन्होंने मृगशीर्ष कृष्णा दशमी तिथि को चतुर्थपहर में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के योग में जैन दीक्षा ग्रहण कर ली।[1] इस अवसर पर सभी गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे सभी के समक्ष महावीर ने पंचमुष्टि केश-लुञ्चन किया जो संसार की समस्त वासनाओं से विमुक्त हो जाने के उपक्रम का प्रतीक है।

देवदूष्य वस्त्र की कल्पना और तथ्य

इस सन्दर्भ में दो परम्परायें उपलब्ध हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर ने प्रारम्भ से ही दिगम्बरीय वेष धारण किया। पर श्वेताम्बर परम्परा में यद्यपि महावीर ने दिगम्बरीय वेष धारण किया अवश्य परन्तु वह देवदूष्य वस्त्र था जो दीक्षा के द्वितीय वर्ष में स्वयमेव खण्ड-खण्ड हो गया। फलत: वे बाद में अचेलक बन गये।

१. जयधवल भाग १, पृ. ७८; तिलोयपण्णत्ति ४, ६६७: उत्तरपुराण ७४.३०३—४,

महावीर के इस प्रकार से अचेलक बन जाने की मान्यता तथ्यहीन अथवा अवास्तविक नहीं है। साधक महावीर ने महाभिनिष्क्रमण करने के तुरन्त बाद निर्वस्त्र अवस्था ग्रहण नहीं की होगी। सम्भव है, साधना के प्रारम्भिक तेरह मास उन्होंने सवस्त्र अवस्था में ही व्यतीत किए हों। यह सवस्त्र अवस्था मुनिवत् न होकर ग्यारहवें प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक की रही हो जहां साधक चेलखण्ड को धारण करता है और भिक्षुक बनकर यथा विधि आहार ग्रहण करता है।

साधना में परिपक्वता आने की दृष्टि से भी साधक को इस अवस्था से गुजरना अत्यावश्यक है। साधना की इतनी लम्बी अवधि में तेरह मास कोई अधिक समय नहीं है। दिगम्बर परम्परा में चूंकि महावीर का चरित विस्तार से मिलता ही नहीं इसलिए यदि उसमें उसका उल्लेख नहीं किया गया तो कोई अन्युक्ति नहीं बल्कि स्वाभाविक ही है। दूसरी ओर श्वेताम्बर परम्परा चूंकि महावीर की समूची जीवनचर्या का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन करती चली आ रही है। अतः उसमें प्रथम तेरहमास में की गई सवस्त्र तपस्या का वर्णन मिलता है तो उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

साहित्य में यह मनौवैज्ञानिक तथ्य दृष्टव्य है कि भक्त अपने आराध्य की हर विशेषता को अतिशय और चमत्कारात्मक ढंग से प्रस्तुत करना चाहता है। उस साधारण वस्त्र को भी प्रस्तोताओं ने देवदूष्य वस्त्र की कल्पना कर प्रस्तुति का ढंग जिस प्रकार से अपनाया है वह निःसन्देह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। अतः इस घटना को विवाद का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए बल्कि उसके मूल तथ्य की ओर हमारी दृष्टि जा सके तो कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा। वीतरागी साधना-पथ में महावीर को उस चोल से आकर्षण ही क्या रहा होगा। वे तो विशुद्धतम अवस्था की खोज में क्रमशः पूर्ण अचेलक होकर बेघर हो गये थे। उन्हें किसी वस्तु विशेष से रोग-द्वेष होने का प्रश्न ही नहीं था।

जैनेतर साहित्य में महावीर के इस महाभिनिष्क्रमण को कोई विशेष महत्त्व नहीं किया गया। पर पूर्ण अचेलक होने के बाद साधना में जिस प्रकार की सघनता और निर्मलता आती गई, वह विशुनतर होती गई और जन-समाज के आकर्षण का केन्द्र बनती गई। पाली साहित्य में उनकी इसी अवस्था का वर्णन मिलता है। वहां उन्हें 'निगण्ठ नातपुत्तो' कहकर अनेक बार स्मरण किया

गया है। यहाँ निगण्ठ शब्द पूर्ण अचेलक और निस्परिग्रही होने का प्रतीक है।

छद्मस्थी साधना और विशिष्ट घटनायें

१. साधनाकाल में महावीर अपना परिचय 'भिक्खु' के रूप में देते रहे।[1] उनके लिए 'मुणि' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[2] ये दोनों शब्द महावीर की साधना के दिग्दर्शक हैं। गृह त्याग करने के उपरान्त साधक महावीर केवल ज्ञान की प्राप्तियों लगभग बारह वर्ष तक सतत साधना करते रहे। इसी काल को छद्मस्थ कहा गया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में महावीर के इस छद्मस्थ जीवन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला गया ' उत्तरपुराण में मात्र छत्तीस श्लोकों (३१७—३५२) में इस वर्णन को पूरा कर दिया गया। जबकि श्वेताम्बर परम्परा में हेमचन्द्र ने इसके लिए समूचे दो सर्ग (५९५+६५८=१२५३ श्लोक) समर्पित किये। उत्तरपुराण में महादेव रुद्र के उपसर्ग और चन्दना के भिक्षादान का ही वर्णन मिलता है। महावीर के विशेष भ्रमजादि का कोई उल्लेख वहां नहीं। इस स्थिति में अचारांग आदि ग्रन्थों में वर्णित उनकी कठोर साधना पूरक दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं है।

छद्मस्थ काल

ठाणांग सूत्र में महापद्मचरित्र के प्रसंग में महावीर के विषय में लिखा है कि उन्होंने तीस वर्ष गृहस्थावस्था में, बारह वर्ष तेरह पक्ष केवलज्ञान प्राप्ति में और तेरह पक्ष कम तीस वर्ष धर्मप्रचार में विताये।[3] तदनुसार महावीर ने महाभिनिष्क्रमण से लेकर केवल ज्ञान प्राप्ति तक छद्मस्थावस्था में जिन स्थलों में विहार और वर्षावास किया, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

१. कुण्डग्राम, कर्मारग्राम (कम्मन-छपरा), कोल्लाग सन्निवेश, मोराक सन्निवेश, ज्ञातखण्डवन, दूइज्जंतग, अस्थिक ग्राम (वर्षावास)।

२. मोराक सन्निवेश, दक्षिण-उत्तर वाचाल, सुरभिपुर, श्वेताम्बी, राजगृह, नालन्दा (वर्षावास)।

---

१. अचारांग, ९.२.१२.

२. वही, ९.१.९.२०

३. ठाणांग सूत्र, ९.३,६९,३ वृत्ति पृ. ५९१।१: धवला में महावीर का केवलिकाल २९ वर्ष ५ माह और बीस दिन लिखा है।

३. कोल्लाग, सुवर्णखिल, ब्राह्मणग्राम, चम्पा (वर्षावास)।

४. कालाप पत्त, कुमारक, चोराक, पृष्ठचम्पा (वर्षावास)।

५. कयंगला, हल्लिदुय, अवर्त, कलँकबुका, पूर्णकलश. श्रावस्ती, नंगला, लाढ़ (लाट) देश, मलय, भद्दिल (वर्षावास) (वैशाली के पास)।

६. कदली, तंवाय, कूबिय, वैशाली, जम्बूसंड, कुपिय, ग्रामाक भद्दिया (वर्षावास)।

७. मगध, अलभिया (वर्षावास)।

८. कुण्डाक, वहुँसालग, लोहार्गला, गोभूमि, मर्दन, शालवन, पुरिमताल, उन्नाग, राजगृह (वर्षावास)।

९. लाढ-वज्रभूमि, सुब्रम्हभूमि, (वर्षावास यहां के वृक्षों और खण्डहरों में हुआ।

१०. कूर्मारग्राम, सिद्धार्थपुर, वैशाली, वाणिज्यग्राम, श्रावस्ती (वर्षा-वास)।

११. सानुलट्ठिय, दृढ़भूमि, मोसलि, सिद्धार्थपुर, वज्रगांव. आलंभिगा, श्वेताम्बिका, वाराणसी, मिथिला, मलय, कौशम्बी, राजगृह वैशाली (वर्षावास)।

१२. सुन्सुमारपुर, नन्दिग्राम, कौशम्बीं, मेदियाग्राम, सुमंगल, सुछेत्ता, पालक, चम्पा (कर्षावास)।

१३. जंभिय, मेढिय, छम्माणि, मध्यम पावा, जंभियग्राम

अहिंसा का वातायन विशिष्ट घटनायें

महाभिनिष्क्रमण कर साधक महावीर कूर्मारग्राम पहुँचे और उसके बाह्य उद्यान में ध्यानस्थ होकर-आत्मसाधना करने लगे। साधना में इतने लीन हो गये कि दृष्टिपथ में आयी वस्तु का भी संस्कार उनके चित्त को प्रभा-वित नहीं कर सका।

उसी समय एक घटना हुई। गांव के किसी ग्वाले (गोपालक) ने अपने बैल चरने के लिए वहीं छोड़ दिये और स्वयं कहीं निकल गया। वापिस आने पर उसे बैल वहाँ नहीं दिखाई दिये। बैल तो चरते चरते कुछ दूर निकल गये थे। ग्वाले ने ध्यानस्थ महावीर से पूछा—"हमारे बैल कहा हैं?" उत्तर न पाकर वह स्वयं उन्हें खोजने चल पड़ा। दैवयोग से वे बैल प्रातःकाल वापिस आकर महावीर के पास ही बैठ गये। इतने में ग्वाला आया और वहां अपने बैल पाकर महावीर के प्रति क्रुद्ध हो गया। उन्हें चोर समझकर वह

मारने दौड़ा। अकस्मात कोई भला आदमी सामने-से आ रहा था। उसने उस ग्वाले को रोका और कहा इस निस्परिगृही व्यक्ति को तुम्हारे बैलों से क्या प्रयोजन ! यह तो आत्मकल्याण के साथ जगत् का कल्याण करने के लिए साधना में लीन है।"

इस भले आदमी का उल्लेख साहित्य में इन्द्र के रूप में किया गया है। उसने महावीर से कहा यदि आप चाहें तो मैं आपको अपनी सेवायें देने के लिए सहर्ष तैयार हूं। महावीर ने उत्तर दिया—व्यक्ति दूसरों के बल पर केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता। उसे अपने ही बल पर उसे प्राप्त करना पड़ता है।—

नापेक्षं चक्रिरेऽर्हन्तः पन साहयिकं क्वचित्।
केवलं केवलज्ञान प्राप्नुवन्ति स्वकीर्यतः ।।
स्ववीर्येणैव गच्छन्ति जिनेन्द्राः परमं पदम् ।।१

यह उत्तद सुनकर वह इन्द्र रूप व्यक्ति बडा प्रभावित हुआ। महावीर के न चाहते हुए भी उसने अपने सिद्धार्थ नामक एक सहायक को उनके संरक्षण के लिए नियुक्त कर तिया। महावीर को शायद इसकी जानकारी नहीं रही होगी। आगमों में इस सिद्धार्थ को एक व्यन्तर देव की कल्पना दी गई है।२

आचारांग और कल्पसूत्र में इसके बाद की गई उनकी तपस्या का विस्तृत वर्णन मिलता है। महावीर अचेलक अवस्था में थे इसलिए उन्हें शीत, उष्ण, दंशमशक आदि की बाधायें होना स्वाभाविक थीं। भोगवासना से पीड़ित महिलाओं का भी उनकी ओर आकर्षित होना सहज ही था। निर्मोही महावीर इन सभी प्रकार की बाधाओं को निर्द्वेष भाव से सहते हुए चार माह क कोल्लाग सन्निवेश के आसपास विचरण करते रहे।

कतिपय प्रतिज्ञायें : तप की पृष्ठ भूमि में

मोराक सन्निवेशवर्ती 'दूइज्जन्तक' नामक पाषण्डस्थ आश्रम का कुलपति सिद्धार्थ का मित्र था कुलपति अभ्यर्थना पर महावीर ने अपना वर्षावास वहीं करने का निश्चय किया। महावीर की कठोर निःस्पृही साधना देखकर आश्रम-वासी दांतों तले अंगुली दवाने लगे, संयोगवश उस वर्ष पर्याप्त वर्षा न होने के कारण वनस्पति, ग्रास आदि पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं हुई। फलतः गायें आकर पर्णकुटी की घास खानें लगीं। आश्रमवासी उन्हें हटाकर अपनी पर्णकुटियों

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १०.३.२८-३०
२. वही, १०.३.३३

की रक्षा करने लगे। पर निस्परिग्रही महावीर ने कभी ऐसा नहीं किया। वे तो अपने ध्यान में दत्तचित्त रहते रहे। आश्रमवासियों ने इसकी शिकायत कुलपित से की। कुलपति ने महावीर से कहा कि कम से कम आपको अपनी पर्णकुटी की रक्षा तो करनी ही चाहिए। महावीर कुलपति के आग्रह से सहमत नहीं हो सके और वहां से उन्होंने प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया। प्रस्थान करने के पूर्व साधक, महावीर ने, निम्नलिखित पांच प्रतिज्ञायें कीं—१ जो तप-त्याग की पृष्ठभूमि में सदैव उनके साथ बनी रहीं।

१. अप्रीतिकारक स्थान में वास नहीं करूंगा।

२. सदैव ध्यानस्थ रहूंगा।

३. मौनव्रती रहूँगा।

४. पाणितल में भोजन-ग्रहण करूंगा। और

५. गृहस्थों को विनय नहीं करूंगा।

आत्मवत् सर्वभूतेषु—

मोराकसन्निवेश से विहार कर महावीर अस्थिग्राम पहुँचे और वहीं वे वे अनुमति लेकर शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में ठहर गये। कहा गया है, एक बलशाली बैल जिसकी सेवा सुश्रुषा की ओर ग्रामवासियों ने उपेक्षा दिखाई, मरकर यश हो गया था और वही सभी को सताता था। उसी के सम्मान में ग्रामवासियों ने यह मन्दिर बनवाया था। विकट स्थिति देखकर लोगों ने महावीर को वहां ठहरने के लिए मना किया फिर भी वे उसी मन्दिर में ध्यानस्थ हो गये। नियमानुसार रात्रि में यक्ष आया और उसने महावीर को विविध प्रकार से तीव्र कष्ट दिये। परन्तु वे साधन-पथ से विचलित नहीं हुए। इस घटना पर यक्ष को बड़ा आश्चर्य हुआ। अन्त में उसने भगवान से क्षमा मांगी और पश्चाताप करने लगा। फलतः महावीर ने उसे प्रतिबोधन दिया—"तू आत्मा को पहचान। आत्मवत् मानकर किसी को कष्ट न दे इन पापों का फल बड़ा दुःखदायी होता है।" यक्ष ने भगवान की आज्ञा सहर्ष स्वीकार की और नतमस्तक होकर वहां से चला गया। सम्भव है, यह यक्ष

---

१. नाप्रीतिमदगृहे वासः स्येयं प्रतिमया सह।
न गेहिविनयं कार्यो, मौन पाणौ च भोजनम्॥
कल्पसूत्र, सुबोधिकाटीका, पृ. २८८.

कोई व्यक्ति विशेष हो जो किसी कारण से रात्रि में ग्रामवासियों को विविध वेष रखकर कष्ट पहुंचाता रहा हो।[1]

भविष्यबोध

उस समय लगभग एक मूहूर्त रात्रि शेष थी। महावीर ध्यानस्थ थे। फिर भी क्षण भर के लिए उन्हें निद्रा आ गई। इस बीच उन्होंने निम्नलिखित दश स्वप्न देखे।

१. ताड़-पिशाच को स्वयं अपने हाथ से गिराना।
२. श्वेत पुंस्कोकिल का सेवा में उपस्थित होना।
३. विचित्र वर्णवाला पुंस्कोकिल सामने दिखाई देना।
४. सुगन्धित दो पुष्पमालायें दिखाई देना।
५. श्वेत गो-समुदाय दिखाई देना।
६. विकसित पद्म सरोवर का दर्शन।
७. स्वयं को महासमुद्र पार करते देखना।
८. दिनकर किरणों को फैलते हुए देखना।
९. अपनी आंतों से मनुष्यषोत्तर वर्वत को वेष्टित करते हुए देखना और
१०. स्वयं को मेरु पर्वत पर चढ़ते हुए देखना।

अस्थिग्राम में ही एक उत्पल नामक निमित्तज्ञानी था जो पार्श्वनाथ परम्परा का अनुयायी था। यक्षायतन में महावीर के ठहरने का समाचार सुनकर वह अनेक आशंकाओं की सम्भावना से चिन्तिन हो उठा। प्रातःकाल होते हुए ही वह इन्द्रशर्मा नामक पुजारी के साथ भी महावीर के दर्शन करने आया। साथ ही बड़ा भारी जन समुदाय भी था। महावीर को सकुशल पाकर सभी को आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। निमित्तज्ञ उत्पल ने महावीर के स्वप्नों का फल क्रमशः इस प्रकार बताया—

१. आप मोहनीय कर्म का विनाश करेंगे।
२. आपको शुक्लध्यान की प्राप्ति होगी।
३. आप विविध ज्ञानरूप द्वादशांग श्रुत की प्ररूपणा करेंगे।
४. चतुर्थ स्वप्न का फल उत्पल नहीं समझ सका।
५. चतुर्विध संघ की आप स्थापना करेंगे।

---

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, १०.३१३१—१३२

६. चारों प्रकार के देव आपकी सेवा में उपस्थित रहेंगे।
७. आप संसार-सागर को पार करेंगे।
८. आप केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।
९. आपकी कीर्ति त्रिलोक में व्याप्त होगी, और
१०. सिंहासनारूढ़ होकर आप लोक में धर्मोपदेश करेंगे।

जिस चतुर्थ स्वप्न का उत्तर निमितज्ञ उत्पल नहीं जान सका। उसका फल महावीर ने स्वयं बताया कि मैं दो प्रकार के धर्म का कथन करूंगा—श्रावक धर्म और मुनिधर्म। इससे यह ज्ञात होता है कि जैनधर्म को सुव्यवस्थित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य महावीर की दृष्टि में था।

परहित का तरना

२. साधक महावीर अस्थिग्राम में प्रथम वर्षावास समाप्त कर मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को मोराकसन्निवेश पहुँचे। वहाँ वे नगर के बाहर के उद्यान में ठहरे। नगर में एक अच्छन्दक नामक पाखण्डी ज्योतिषी रहता था। उसकी आजीविका का साधन ज्योतिष ही था। उस समय निमित्तज्ञानी का वहुत आदर-सम्मान होता था। अच्छन्दक को जो प्रतिष्ठा मिली उसकी आड़ में उसने अनेक दुष्पाप करना प्रारम्भ कर दिये। महावीर ने उसे सही मार्ग पर लाने की दृष्टि से अपने निमित्तज्ञान को प्रकट किया। समूचा नगर उनकी पूजा करने लगा और अच्छन्टक को भूल गया। साथ ही अच्छन्दक के पापों को भी प्रगट कर दिया गया। अब अच्छन्दक की आजीविका का साधन तिरोहित होने लगा। अब असहाय होकर वह महावीर के पास आया और कहने लगा—"यहाँ आपके उपस्थित रहने से मेरी आजीविका समाप्त प्रायः हो रही है। आप तो निःस्पृही हैं। यदि आप यहां से चले जावें तो मेरा कल्याण हो जावेगा।"[१]

चण्डकौशिक सर्प : एक दिशा बोध

महावीर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उस अवान्छित स्थान पर नहीं रुके। मोरकसन्निवेश से वे सुवर्णकूला और रूप्पकूला नदी के किनारे वसी वाचाला के उत्तरभाग की ओर चल पड़े। बीच में कनकखल आश्रम मिला वहां ग्वालों ने महावीर को आगे बढ़ने पर रोका और कहा कि आगे वन में चण्डकौशिक नामक दृष्टिविष भयंकर सर्प रहता है। वह किसी को भी देखते ही विष वमन करने लगता है। उसके विषवमन करने के कारण वन-वृक्ष भी

१. अवश्यक चूर्णि, प्रथम भाग, पृ०, २७५

सूखने लग गये हैं। महावीर ने ग्वालों की बातों पर विशेप ध्यान नहीं दिया, आगे वढ़ते गये। उन्हें ध्यान में आया कि इस चण्डकौशिक की अशुभ वृत्तियों को शुभ वृत्तियों की ओर मोड़ा जा सकता है।

कहा जाता है, चण्डकौशिक अपने पूर्वजन्म में कठोर तपस्वी था। उसके पैर के नीचे एकवार एक मेढकी दवकर मर गई। जिसकी उसने प्रतिक्रमण करते समय आलोचना नहीं की। शिष्य द्वारा स्मरण कराये जाने पर वह क्रोधित होकर उसे मारने दौड़ा। पर बीच में ही एक स्तम्भ से सिर टकरा जाने पर वह तत्काल चल बसा और करकखल आश्रम के कुलपति की पत्नि थी कुक्षि से उसने जन्म लिया। वालक का नाम कौशिक रखा गया। पर अत्यधिक चण्ड प्रकृति होने के कारण उसका नाम चण्डकौशिक निश्चित हुआ। चण्कौशिक अपने आश्रम की रक्षा का ध्यान अधिक रखता था। एकवार समीपवर्ती सेयविया नगरी के राजकुमारों ने आश्रम वन को उजाड़ दिया। चण्डकौशिक उन्हें मारने के लिए परशु लेकर दौड़ा। पर बीच में ही वह गड्ढे में गिरकर मर गया और दृष्टिविषि नामक विकराल सर्प हुआ।

महामना महावीर को ध्यानस्थ देखकर चण्डकौशिक सर्प को बड़ा विस्मय हुआ। वह क्रुद्ध होकर फून्कार करने लगा। फिर भी महावीर को अविचल देखकर उनके पैर में तीव्र दंष्ट्राघात कर दिया। फलस्वरूप उनके पैर से रक्त के स्थान पर दुग्धारा प्रवाहित होने लगी। चण्डकौशिक यह देखकर स्तब्ध रह गया। इस बीच महावीर का ध्यान समाप्त हो गया और उन्होंने चण्ड़कौशिक को उद्बोधन दिया—"उपसम यो चण्डकोसिया! हे चण्डकौशिक! शान्त हो जाओ। तूम अपने ही पापों के कारण संसार में भटक रहे हो। अब विकार भावों को छोड़ों और अपना भविष्य संभालो।"

"साधक महावीर की मर्मभेदिनी वाणी को सुनकर चण्डकौशिक को जातिस्मरण हो आया। उनके निश्छल, शान्त और सौम्य भाव को उसने परखा और प्रतिज्ञा की कि मरण पर्यन्त वह न तो अब किसी को सतायेगा और न ही भोजन-ग्रहण करेगा।"

चण्डकौशिक को शान्त और निश्चल तथा महावीर को सकुशल देखकर ग्रामवासियों ने आश्चर्य व्यक्त किया। वे महावीर के प्रशंसक बन गये। इधर चण्डकौशिक को निश्चल और शान्त समझकर लोगों ने उसे पत्थर मारे और असहाय पीड़ा दी। पर चण्डकौशिक उस पीड़ा को समभाव

से सहन करता रहा और शुभ भावों पूर्वक उसने अपना देह त्याग दिया।१

मक्खलि गोशालक से भेंट

साधक महावीर एक बार तन्तुवाय शाला में ठहरे हुए थे। मंखलि-पुत्र गौशालक भी वहीं रुका हुआ था। एक बार गोशालक के पूछने पर महावीर ने बता दिया कि तुम्हें आज भिक्षा में कोदों का वासा चावल (भात), खट्टी छांछ और खोटा रुपया मिलेगा। अनेक प्रयत्न करने पर भी गोशालक को भिक्षा में यही सब कुछ मिला। इस घटना से वह नियतिवादी बन गया।२

इधर महावीर पारणा लेकर नालन्दा से कोल्लाग सन्निवेश पहुँचे। वहाँ बहुल नामक ब्राह्मण के घर आहार लिया। गोशालक भी महावीर को खोजते-खोजते कोल्लाग, पहुँच गया और वहां उसने उनका शिष्यत्व स्वीकार लिया।३

इसके बाद छह वर्ष तक गौशालक अविरल रूप से महावीर के साथ रहा। इस बीच अनेक ऐसी घटनायें हुई जिनसे गोशालक का विश्वास नियतिवाद पर दृढ़तर होता गया और अन्ततः वह घनघोर नियतिवादी हो गया।

३. कोल्लाग सन्निवेश से विहार कर महावीर सुवर्णखल पहुँचे। मार्ग में कुछ ग्वाले खीर पका रहे थे। गोशालक ने कहा-रुकिये, हम लोग खीर खाकर चलेंगे। महावीर ने कहा यह खीर पक नहीं पायेगी। उसके पकने के पूर्व ही हण्डी फूट जायेगी। महावीर की यह सूक्ष्मान्वेक्षण शक्ति का प्रदर्शन था। अनुमान सही निकला। गोशालक का विश्वास नियतिवाद पर और बढ़ गया।

४. महावीर के साथ रहते हुए भी गोशालक की वृत्तियां शान्त नहीं हुई थीं। वह क्रोधी और रागी प्रकृत्ति का था। इसलिए उसे अनेक स्थानों पर अपमान सहन करना पड़ा। कभी वह महिलाओं से छेड़छाड़ करना तो कभी परमतावलम्वी साधु और श्रावकों से झगड़ जाता। इसलिए जनसमुदाय के दोषका वह शिकार हो जाता।

---

१. वही, प्रथम भाग पृ० २७८. ६

२. वही, प्रथमभाग, पृ, २८३

३. भगवतीशालक, १५,१.५४१

पार्श्वस्थ साधुओं से भेंट

कूर्माटक सन्निवेश में पार्श्वनाथ परम्परा के सन्तानीय साधुओं से गोशालक की भेंट हुई। महावीर तो उद्यान में ही ध्यानास्थ रहे पर गोशालक गांव में भिक्षार्थ गया। वहां विचित्र वस्त्र पहने पार्श्वनाथ परम्परा के साधुओं से गोशालक की भेंट हुई और उनसे विवाद होने पर गोशालक ने उपाश्रय जल जाने का अभिशाप भी दिया।१

महावीर से भी उनकी भेंट हुई और वे बड़े प्रसन्न हुए। सन्तानीय साधुओं के प्रधान आचार्य मुनिचन्द्र ने तो उसी समय अपने मुख्य शिष्य को कार्यभार सोंपकर स्वयं जिनकल्प दीक्षा धारण कर ली। साधनाकाल में ही एक सुरापानक कुम्भकार ने उनका अन्त कर दिया। शुभ वृत्तियों के कारण उन्होंने उसी जन्म में निर्वाण प्राप्त कर लिया।२

अग्नि उपसर्ग

५. हल्लिदुय ने साधक महावीर एक हल्लिहग नामक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में स्थिर हो गये। उसी वृक्ष के नीचे कुछ और भी व्यक्ति ठहरे हुए थे। वे रात्रि में आग जलाकर शीत से बचते रहे और प्रातःकाल उसे बिना बुझाये ही वहां से चल पड़े। संयोग से वह आग फैल गई और उसकी लपटों में महावीर के पैर झुलस गये। फिर भी वे विचलित नहीं हुए।३

अनार्य देशों में भ्रमण

इसके बाद साधक महावीर के मन में यह विचार आया कि विहार भूमि तो उनसे परिचित है। ऐसे स्थान पर क्यों न जाया जाय जहां कि उनका कोई परिचित ही न हो। ऐसे अपरिचित स्थानों पर ही साधना-ज्योति में चमक आ सकती है और कर्मों की निर्जरा हो सकती है। यह सोचकर महावीर ने लाढ़ देश में जाने का निश्चय किया। यह देश उस समय असंस्कृत और असभ्य था। इसलिए साधारणतः वहां मुनियों का विहार नहीं होता था। इस दृष्टि से महावीर का यहां विहार विशेष महत्त्वपूर्ण था।

महावीर लाढ देश पहुँचे पर वहाँ उन्हें अनुकूल भोजन और आवास भी नहीं मिल सकता। वहाँ के लोग उन पर कुत्ते छोड़ देते, लाठियाँ मारते और

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, १०-३-४५२

२. आवश्यकचूर्णि, भाग १, पृ. २८६

३. वही, पृ. २८८

उन्हें शरीर से घसीटते । इन सभी उपसर्गों को महावीर का समभावशील व्यक्तित्व सहर्ष सहन करता रहा । उन्हें न आहार से लोभ था न शरीर से । और न किसी प्रकार की विषय-वासना से । इसलिए वीत-रागी होकर सभी प्रकार के उपदेश सहन करने में उन्हे विशेष कठिनाई नहीं हुई ।१

गोशाल्लक से पार्थक्य

अनार्थ देशों से लौटकर भ्रमण करते हुए साधक महावीर ने वैशाली की ओर विहार किया । मार्ग में ही गोशालक ने उनसे कहा—"मुझे आपके कारण बहुत दुःख भोगना पड़ते हैं । अतः अधिक अच्छा यही है कि मैं आपसे पृथक् बना रहूं ।" महावीर ने उसके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया । पार्थक्य हो जाने पर महावीर वैशाली की ओर चल पड़े और गोशालक राजगृह पहुँचा ।

कटपूतना का उपसर्ग

वैशाली से महावीर ग्रामक सन्निवेश पहुँचे । उस समय माघी शीत अपने प्रखर रूप में थी । लोग घर से बाहर नहीं निकल पाते थे । पर महावीर के तेजस्वी शरीर पर उसका कोई असर नहीं हुआ । वे तो दिगम्बरावस्था में ही उन्मुक्त आकाश के नीचे ही ध्यानस्थ हो गये । इस बीच में कटपूतना नामक एक स्त्री ने उन पर घनघोर उपसर्ग किये । उसके द्वारा छोड़े गए शीतल जल और हिला देने वाली आंधी कीं कठोर प्रतीति को महावीर ने क्षमाभाव पूर्वक सहन किया । उनके मन में तनिक भी विकार भाव नहीं आया । फलस्वरूप उन्हें परमावधि ज्ञान प्राप्त हो गया । कटपूतना भी थककर शरणागत हो गई ।

७. इसी प्रकार बहुक्षालादि गाँवों में शालार्य ने भी साधक महावीर को तीव्र कष्टकारी उपसर्ग किए पर महावीर उन सभी को अहिंसक साधना के बल पर सहन करते रहे ।

लोहार्गला उपसर्ग

लोहार्गला में परिचय प्राप्त किये बिना प्रवेश नहीं दिया जाता था । महावीर से पूछे जाने पर कोई उत्तर नहीं मिला । फलतः उन्हें राजा जित्त शत्रु के पास ले जाया गया । वहाँ उत्पल नामक निमित्त ज्ञानी ने जित्त शत्रु

१. आचारांग, ९,३, ४-५

को महावीर का पमिचय दिया। परिचय प्राप्त कर जित्त शत्रु ने क्षमा याचना की ओर मुक्त कर दिया।

अनार्य देश भ्रमण

९. साधक महावीर ने एक बार पुनः साधना की परीक्षा के निमित्त अनार्य देशों में भ्रमण करना चाहा। अतः राजगृह से विहार कर वे लाढ़ देश की ओर गये। वहां अनुकूल आहार-विहार और आवास पाना सरल नहीं था। इसके पूर्व भी उन्होंने एक बार और अनार्य देशों का भ्रमण किया था। इसलिए क कष्टों उन्हें अनुभव था। अनार्यों द्वारा उन्हें मारा पीटा जाना, दोनों से काटना, कुत्तों का छोड़ना, पत्थर मारना, अपशब्द कहना, धूल फेंकना, शरीर का मांस निकाल लेना आदि प्रकार से विविध उपसर्ग किये। पर साधक महावीर उन्हें उसी प्रकार सहन करते हुए साधना-पथ पर बढ़ते रहे जिस प्रकार कवचादि से संवृत शूरवीर पुरुष योद्धा संग्राम के कठोर प्रहरों का सहता हुआ भी आगे बढ़ता चला जाता है।[१]

गोशालक का पुनर्मिलन

१०. अनार्य देशों से वापिस आकर महावीर ने कूर्म ग्राम की ओर प्रयाण किया गोशालक यहां पुनः उनके साथ हो गया। मार्ग में एक वैश्यायन नामक तापस अपने जटाजूटों से गिरते हुए यूवाओं को रख रहा था। गोशालक को कौतुहल हुआ। उसने जाकर तापस से प्रश्न-प्रतिप्रश्न किये जो उसके क्रोध के कारण सिद्ध हुए। फलतः उसने गोशालक पर तेजोलेश्या छोड़ दी। गोशालक दौड़ता-दौड़ता महावीर के पास आया। उन्होंने शीतलेश्या से बचा लिया। यह देखकर तापस को आश्चर्य हुआ और वह महावीर की शक्ति का प्रशंसक बन गया। गोशालक तेजोलेश्या की शक्ति देखकर महावीर से उसकी सिद्धि प्राप्त करने की रीति को समझा।

इसके बाद वे दोनों सिद्धार्थपुर की ओर गये। मार्ग में वहीं तिल का पौधा मिला जिसे गोशालक ने महावीर की वाणी को असत्य सिद्ध करने के लिए फेंक दिया था। गोशालक ने पौधे की फली में सात बीज ही पाये। महावीर की वाणी सत्य सिद्ध हुई। यह देखकर गोशालक का विश्वास नियति-

---

१. सूरो संगामसीसे वा संकुडे तथ्य से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइं अचले भगवं दीयित्सा॥
आचारांग, ९, ३० १-३

वाद पर और अधिक दृढ़ हो गया और उसने महावीर से पृथक् होकर अपने स्वतन्त्र सम्प्रदाय की स्थापना कर ली।

तप्त धूलि

वैशाली में उन्होंने उपद्रवी बालकों के उपसर्ग सहे। वहां से वे वणियगाम की ओर गये। मार्ग में गण्डवी नदी को नाव से उन्हें पार करना पड़ा। पर किराये का पैसा न देने के कारण उन्हें अत्यन्त तप्त धूलि में खड़ा कर दिया गया। संयोगवश शंख राजा का भानेज उसी समय आ गया। उसने पहचान-कर उन्हें मुक्त करा दिया।

संगम के प्राकृतिक-अप्राकृतिक व्यवधान

साधक महावीर दृढ़ भूमि के बाह्य उद्यानवर्ती पोलाक्ष नामक चैत्य में निश्चल होकर ध्यानस्थ हो गये। लगातार ध्यान करते रहने से विविध प्रकार के प्राकृतिक और अप्राकृतिक दुःसह उपसर्ग हुए। उनका समूचा शरीर धूल-धूसरित हो गया। उसे वज्रमुखी चींटियों, डांस-मच्छरों, दीमकों, नेवलों और सर्पों ने काटा। जब कभी हाथी और बाघों के भी उपसर्ग हुए। आसपास जलती हुई अग्नि को भी सहन किया। पक्षियों ने अपनी चंचुओं से उनके शरीर को विदीर्ण किया। तेज आँधी और तूफान आये। कामुक महिलाओं ने अपने हाव-भाव दिखाये। परन्तु महावीर अपने साधना-पथ से विचलित नहीं हुए। इन उपसर्गों को शास्त्रों में संगम देवकृत माना गया है।

कठोर अभिग्रह

१२. कौशाम्बी में महावीर ने पौषकृष्णा प्रतिपदा के दिन एक कठोर अभिग्रह किया—"मैं ऐसी राजकुमारी से ही भिक्षा ग्रहण करूंगा जिसका सिर मुड़ा हो। हाथ में हथकड़ी और पैर में बेड़ी हो, आँखों में आँसू हों, तीन दिन की उपवासी हो, जिसके उड़द के बदले सूप के कोने में पड़े हों, भिक्षा-समय व्यतीत हो चुकने पर जो देहली के बीच खड़ी हो और दासीपने को प्राप्त हुई हो।"

साधक महावीर यह भीषण प्रतिज्ञा बहुत समय तक पूरी नहीं हो सकी। उपासकों और भक्तों के बीच उनका यह अनाहार आश्चर्य, चिन्ता और चर्चा का विषय बन गया। प्रतिज्ञा के स्वरूप के विषय में किसी को भी जानकारी नहीं थी। अभिग्रह को धारण किए हुए पांच माह पच्चीस दिन हो चुके थे।

संयोगवश महावीर भिक्षा के लिए धनावह सेठ के घर पहुँचे। वहां राज कुमारी चन्दना तीन दिन की उपवासी, हथकड़ी और वेड़ी पहने हुए, सूप में उवाला कुलमास लिए हुए किसी अतिथि की प्रतीक्षा में थी कि उसे तेजस्वी महावीर आते हुए दिखे। महावीर का अभिग्रह अभी पूरा नहीं हुआ था। इसलिए जैसे ही वे वापिस जाने लगे कि चन्दना की आँखों में आँसू आ गये। साधक महावीर की प्रतिज्ञा अब पूरी हो चुकी थी। उन्होंने चन्दना के हाथ से पारणा ली। चन्दना भक्त व्यक्तियों के कण्ठ का हार बन गई। यही चन्दना कालान्तर में भगवान महावीर की प्रथम साध्वी हुई।

कांस शालाकायें

१३. एक बार छम्माणि के वाह्य उद्यान में महावीर ध्यानस्थ थे। वहाँ सन्ध्याकाल में एक ग्वाला अपने बैल छोड़कर गाँव चला गया। लौटने पर उसे वहां बैल दिखाई नही दिये। महावीर से पूछने पर कोई उत्तर नहीं मिला। क्रुद्ध होकर उसने उनके दोनों कानों में कांस नामक घास की शलाकायें डाल दीं और उन्हें पत्थर से ऐसा ठोक दिया कि वे परस्पर में भीतर मिल गई। वाहर के शेष भाग को उसने तोड़ दिया ताकि कोई उन्हें देख सके। महावीर ने इस असह्य वेदना को भी शान्ति पूर्वक सह लिया।

छम्माणि से महावीर मध्यम पावा पहुँचे। वहाँ भिक्षा के लिए वे सिद्धार्थ नामक वणिक के घर गये। सिद्धार्थ उस समय अपने मित्र 'खदक' नामक वैद्य से वात कर रहा था। उन दोनों ने महावीर को देखते ही उनकी वेदना का आभास कर लिया। इधर महावीर उद्यान में आकर ध्यानस्थ हो गये। सिद्धार्थ और खदक औषधियों के साथ महावीर को खोजते हुए उद्यान में पहुँचे। उन्होंने उनकी तेल मालिश की और फिर संडासी से दोनों कानों की शलाकायें वाहर निकाल दीं। अधिकयुक्त शलाकाओं से निकालने की तीव्र वेदना से महावीर के मुंह से एक तीखी चीख निकली। वैद्य खदक ने घाव पर संदोहरण औषधि लगा दी और वन्दना कर चला गया।

आश्चर्य की बात है कि महावीर की तपस्या का प्रारम्भ भी ग्वाले के उपसर्ग से हुआ और उसका अन्त भी ग्वाले के ही उपसर्ग से हुआ।

आगमों के अनुसार महावीर ने साधकावस्था में दारुण उपसर्ग सहे उनमें जघन्य उपसर्ग कठपूतला राक्षसी का मध्यम उपसर्ग संगम का और

१, आवश्यक चूर्णि भाग १, पृ० ३-२०-१

उत्कृष्ट उपसर्ग कानों में से कीलों के निकाले जाने का था।[1]

दुर्धर तप

इस प्रकार साधक महावीर छद्मस्थ काल में लगातार लगभग साढे बाहर वर्ष तक कठोर साधना में लगे रहे। इस बीच उन्हें कहीं चोर समझा गया तो कहीं गुप्तचर कहीं योगी समझा गया तो कहीं भोगी, कहीं ज्ञानी समझा गया तो कहीं अज्ञानी। फलतः उन्हें सभी प्रकार के उपद्रवों को झेलना पड़ा। साधक महावीर वीतरागी और महाव्रती थे। उन्हें किसी प्रकार का राग, द्वेष, मोह नहीं था। वे तो उद्यान, गुफा, पर्वत, वृक्ष का अधोभाग चैत्य, खण्डहर, आदि एकाकी स्थानों पर अपनी सा[illegible]में मग्न हो जाते थे और मौनव्रती बनकर सभी प्रकार की प्राकृतिक और अप्राकृतिकबाधाओं को सहन करते रहे।[2]

साधना काल में महावीर को उचित आहार भी अप्राप्य रहा। प्रायः उन्हें नीरस आहार मिलता जिसे वे निःस्पृही होकर मात्र शरीर के सञ्चालनार्थ ग्रहण कर लेते। समूचे साधनाकाल में उन्होंने कुल ३४९ दिन आहार ग्रहण किया और शेष दिन निर्जल तपस्या में लगाये (कल्प सूत्र ११६,) में उनकी छद्मस्थकालीन तपस्या का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है—

१. छःमासी तप एक
२. पांच दिन कम छः मासी तप एक
३. चातुर्मासिक तप नौ
४. त्रैमासिक तप दो
५. सार्ध द्वैमासिक तप दो
६. द्वैमासिक तप छः
७. सार्धमासिक तप दो
८. मासिक तप बारह
९. पाक्षिक तप बहत्तर
१०. भद्रप्रतिम्म एक दिन की
११. महाभद्रप्रतिमा चार दिन की
१२. सर्वतोभद्रप्रतिमा दस दिन की
१३. छट्टभक्त दो सौ उन्तीस

---

१. कल्पसूत्र, ११६; अवश्यकचूर्णि, भाग १ पृ. ३२२

२. नागो संगामसीसे वा पारए तथ्य से महावीरे, आचरांग, ९.३.८

१४. अष्टम भक्त बारह
१५. पारणा तीन सौ उनचास दिन, और
१६. दीक्षा का १२ दिन।

केवल ज्ञान की प्राप्ति

लगभग साढ़े बारह वर्ष तक तपस्या करते-करते साधक महावीर का आत्मा अनुसार दर्शन-ज्ञान-चरित्र से विमल होता गया। तेरहवें वर्षायोग में वे मध्यम पावा से विहार करते हुए जंभियग्राम पहुँचे और वहाँ के बाह्य उद्यान में ध्यानस्थ हो गये। साधना की यह चरमावस्था थी और उसका चरम काल भी। महावीर का आत्मा अब पूर्णतः निर्मल हो चुका था। फलतः वैसाख शुक्ला दशमी के दिन दिन के चतुर्थ प्रहर में ऋजुकूला नदी के तट- वर्ती शालवृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन काल में महावीर को कैवल्य की प्राप्ति हो गई। उनके ज्ञानावर णीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मों का क्षय हो गया। अब महावीर अर्हन्त सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो गये। वे समस्त लोक की समस्त पर्यायों को एक साथ हस्तामलकवत् जानने-देखने लगे।[1] यह उनके आत्मा की अनन्त शक्ति का प्रस्फुटन था। बौद्ध साहित्य में भी उनकी सर्वज्ञता के सन्दर्भ एकाधिकबार आये हैं।[2] वहां भी उन्हें गणी, गणाचार्य और तीर्थङ्कर कहकर स्मरण किया गया है। कालान्तर में उनको भगवान् कहकर भी संबोधित किया जाने लगा। इन सभी शब्दों के पीछे भगव न् महावीर के व्यक्तित्व की विशेपतायें छिपी हुई हैं जिन्हें हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

तीर्थंकर महावीर का यह अन्तर्ज्ञान उनकी विशुद्ध आत्मा की प्राप्ति का प्रतीक है। अनन्तज्ञान स्वरूपात्मक आत्मा की पूर्ण अवस्था को उपलब्ध कर भगवान ने प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से स्वतः प्राप्त और स्वानु-भूमिलय चिन्तन के प्रचार-प्रसार करने का निश्चय किया। फलतः वे अर्हन्त और तीर्थंकर कहलायेगा। उनके उपदेश आज भी विश्वशान्ति की प्रस्थापना के लिए उपयोगी हैं।

---

१. जय धवला, भाग १, पृ० ८०; तिलोय पण्णत्ति, ४.७११

२. विस्तार से देखिये, लेखक का ग्रन्थ—Jainism in Buddhist-Literature, नागपुर, १९७२,

चार लघु कवितायें

मोतीलाल सुराणा

ध्येय को प्राप्त करें।

जीवों पर दया भाव
कष्ट सहे सम भाव।
निन्दा हो प्रशंसा हो
मन में न लावे विकार।
मान को त्याग दे
प्रमाद से दूर रहें।
राग द्वेष छोड़ कर.
दुःख परिषह सहे।
अनासक्त एकांतप्रिय,
सरल भाव हो गम्भीर।
मोह में फंसे नहीं
संयम में शूर वीर।।
त्याग की इमारत है,
नींव में गुण भरें।
आत्मा ऊंची बने,
ध्येय को प्राप्त करे।

संसार तो सागर है

संसार तो सागर है
शरीर नाव रूप है।
जीव तो नायिक है,
यही इसका भ्रम है ।।
नाव में छेद हों तो.
बीच में ही डूबती।
कषायों से आत्मा,
चौरासी में घूमती
संयम से बैठे नाविक,
पार है उतरता।
गुणी पुरुष पाप से,
सदा ही है डरता ।।

मालिक कोई और है

ग्वाला चराये गायों को,
मालिक कोई और है।
वह तो स्वामी है,
केवल एक लाठी का ।।
तिजोरी में रुपया पैसा,
सेठ है मालिक उसका।
मुनीम तो केवल एक,
मालिक है चाबी का ।।
विषयाभिलाषी रहे बने,
पालने पर संयम के।
चारित्र के अभाव में,
धनी केवल वेश के ।।
क्रोध मान माया लोभ,
दवा इन्द्रि पाँच को।
विषयों से पीछे मुड़
जानते इस साँच को

विवेक से काम करें

प्रमाद तो पाप है,
सावधानी ही है धर्म।
संयम से नाश हो।
पूर्व के संचित कर्म ।।
बुद्धि को स्थिर रखें,
अभ्यास जागृत करें।
शास्त्रों का पाठन हो,
गुणियों का साथ करें।
कषाय से दूर रहें,
विवेक से काम करें।
नये पाप बांधे नहीं,
निश्चित मोक्ष को वरें ।।

म हा वी र 卐 वा णी

जीओ और जीने दो

—हजारीलाल जैन 'काका'

पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की,
जन जीवन में ज्योति जला दी जिनने आत्मोत्थान की।

जब हिंसा के अंधकार ने सारे जग को घेरा था,
शिव मग भटक गया था मानव, छाया घोर अंधेरा था।
धर्म समझ कर तब अधर्म से करता मानव प्यार था,
प्रतिदिन लाखों पशु यज्ञों में झोंक रहा संसार था।
फिकर नहीं थी जरा किसी को बेगुनाह के जान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की।

भ्रष्टाचार पापमय थी सब सत्य अहिंसा की राहें,
दानवता खिलखिला रही थी मानवता भरती आहें।
करुणा करुणा भरे स्वरों में सिसक रही थी जोरों से,
चीत्कार निर्बल जीवो की आती चारों ओरों से।
भारी खुशी मनाई जाती प्राणी के बलिदान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की।

सती नाम पर अब लोगों को पति के साथ जला देते,
उनके रोने चिल्लाने पर कोई ध्यान नहीं देते।
फिर पशुओं को कौन पूछता उन पर कौन रहम लाते,
जब नर मेघ यज्ञ में जिन्दा मानव झोंक दिये जाते।
पशु जैसी बिक्री होती बाजारों में इन्सान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की।

कुंडल पुर में जन्म हुआ तब महावीर भगवान का,
दीन दुखी जीवों को मानों दिन आया वरदान का।
तरुणाई आते हो देखी यहाँ धर्म की परिभाषा,
जीवमार मुक्ति पाने की रखता है नर अभिलाषा।
राज त्याग चल पड़ा वीर तब ज्योति जलाने ज्ञान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की।

सही धूप सर्दी की बाधा शूल चुभे कई पाँव में,
वनवासी वन गया पला जो राजमहल की छांव में, ।
ज्ञान ज्योति प्रकटी अन्तर में वे पीरों का पीर बना,
सन्मति वन जीता कर्मों को तभी वीर महावीर बना ।
सच्चा धर्म अहिंसा है थी वाणी दया निधान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की ।

जिओ और जीने दो सबको प्राण सभी को प्यारा है,
नहीं सताओ किसी जीव को ये सद्धर्म तुम्हारा है ।
चोरी, झूठ, कुशील आदि की पास न फटकें बाधायें,
अगर मोक्ष की इच्छा है तो रोको अपनी इच्छायें ।
सतत साधना से गति मिलती 'काका' सिद्धि स्थान की,
पच्चिस सौवीं साल सफल हो महावीर भगवान की ।

ऋग्वेद में श्री वर्धमान-भक्ति

देव वर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राय सुभर वेधस्याम् ।
घृदतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वेदेवा आदि त्याये ज्ञियासः ।।४।।

—ऋग्वेद[1] मंडल २ अ. १, सूक्त ३,

हे देवो के देव, वर्धमान ! आप सुवीर (महावीर) हैं, व्यापक हैं । हम संपदाओं की प्राप्ति के लिये इस वेदी पर घृत से आपका आह्वान करते हैं, इसलिये सब देवता इस यज्ञ में आवें और प्रसन्न होवें ।

---

१. ऋग्वेद अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद में अर्हिन्तों और दूसरे जैन तीर्थंकरों की भक्ति और स्तुति के अनेक श्लोक मिलते हैं ।

जैन दर्शन में काल द्रव्य का स्वरूप

डा० रमेशचन्द जैन

जैन दर्शन में काल को एक स्वतन्त्र द्रव्य माना गया है। इसका एक दूसरा नाम अद्धा समय भी है जो व्यवहार काल की दृष्टि से दिया गया है। अद्धा समय का अर्थ होता है—सूर्य आदि की क्रिया से अभिव्यक्त होने वाला समय। कुछ श्वेताम्वर आचार्य काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते इसलिए उनके यहाँ तत्वार्थ सूत्र में कालस्य ऐसा पाठ न होकर कालस्येत्येके१ (अर्थात कुछ आचार्य कहते हैं कि काल भी द्रव्य है) ऐसा पाठ है। दिगम्बराचार्य सर्वसम्मति से काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं। उनका कहना है कि काल द्रव्य है, क्योंकि इसमें द्रव्य का लक्षण पाया जाता है। जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है वह सत है२ और जो गुण और पर्याय वाला है वह द्रव्य है।३ इस प्रकार द्रव्य का दो प्रकार का लक्षण कहा जाता है। ये दोनों ही लक्षण काल में पाए जाते है। काल में ध्रुवता स्वनिमित्तक है, क्योंकि वह अपने स्वभाव से सदा स्थित है। व्यय और उत्पात परनिमित्तण हैं और अगुरुलघु गुण की हानि और वृद्धि की अपेक्षा स्वनिमितक भी हैं। काल के साधारण और असाधारण दो प्रकार के गुण हैं। उनमें असाधारथ गुण वर्तना हेतुत्व है और साधारण गुण अचेतनत्व, अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व आदि हैं। इसी प्रकार व्यय और उत्पाद रूप पर्यायें भी हैं। अतः काल द्रव्य की स्वतन्त्र रूप से सत्ता सिद्ध होती है।४

काल का लक्षण—काल का लक्षण वर्तन है।५ हर एक द्रव्य प्रत्येक पर्याय में प्रति समय जो स्वसत्ता की अनुभूति करता है उसे वर्तना कहते है। पदार्थ अपनी उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक सत्ता का प्रतिक्षण अनुभव करते

१. उमास्वातिः तत्वार्थाधिगम भाष्य ५।३८
२. उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त सत ।।तत्वार्थसूत्र ५।३०
३, गुणपर्र्ययवद द्रव्यम ।।तत्वार्थसूत्र ५।३८
४, पूज्यपाद : स्वार्थ सिद्धि ५।३९
५, 'वट्टणलक्खोच कालोत्रि' कुन्द्र कुन्द : पंचास्तिकाय गाथा २४

हैं। धर्मादि द्रव्य अपनी अनादि या आदिकार पर्यायों में प्रतिक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप से परिणत होते रहते हैं यही स्वसत्तानुभूति वर्तन है। वर्तन प्रतिक्षण प्रत्येक द्रव्य में होती है। यह अनुमान से इस प्रकार सिद्ध होता है—जैसे चावल को पकाने के लिए बटलोई में डाला और वह आधा घण्ट में पका तो यह नहीं समझना चाहिये कि वह २६ या २९।। मिनट ज्यों का त्यों रखा रहा। उसमें प्रथम समय से सूक्ष्म पाक बराबर होता रहा है। यदि प्रथम समय में पाक न हुआ होता तो दूसरे तीसरे आदि क्षणों में भी सम्भव नहीं हो सकता था। इस तरह पाक का ही अभाव हो जायगा।६

काल के भेद—काल दो प्रकार का होता है। (१) निश्चय काल, (२) व्यवहार काल। निश्चय काल पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श रहित अगुरुलघु, अमूर्त और वर्तन लक्षण वाला है।७ लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर जो रत्नों की राशि के समान अवस्थित हैं उन्हें कालाणु कहते हैं। ये कालाणु रूपादि गुणों से रहित होने के कारण अमूर्त हैं।८ जिस प्रकार धर्म। अधर्म और आकाश द्रव्य का आगम के द्वारा निश्चय होता है उसी प्रकार निश्चय काल द्रव्य का भी निश्चय होता है। जीव और पुद्गलों का परिणाम नाना प्रकार का होता है और गौण काल की प्रवृत्ति मुख्य काल के कारण है। समस्त पदार्थों में जो परिणाम क्रिया, परत्व और अपरत्व रूप परिणाम न होते हैं वे अपने-अपने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग निमितों से ही सब ओर प्रवृत होते हैं। उन अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग निमित्तों में अन्तरङ्ग, निमित तो वस्तु की अपनी योग्यता है जो सदा उसमें स्थित रहती है और वाह्य निमित्त निश्चय काल द्रव्य है। परस्पर के प्रवेश से रहित कालाणु

४. पूज्यपाद : सर्वार्थसिद्धि ५।३९

५. 'वदृणलक्खोय कालोत्ति' कुन्दकुन्द : पंचास्तिकाय गाथा २४

६. अकलंकदेव : तत्त्वार्थवार्तिक ५।२२।४-५

७. ववगदपणूवण्णरसो ववगददो गंध अट्ठफासोय।
आदुरुलहुगो अमुत्तो वदृण लक्खो यकालोत्ति।। पंचास्तिकाय गाथा २४

८. लोगागास पदे से एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का। रयणाणं रासी-मिव ते कालाणू मुणेयव्वा।।
रूपादि विरहितादमूर्ता।। सर्वार्थसिद्धि ५।३९

पृथक्-पृथक् समस्त लोगों को व्याप्त कर राशि रूप में स्थित हैं। द्रव्यधिक नय की अपेक्षा कालाणुओं में विकार नहीं होता इसलिए उत्पाद व्यय से रहित होने के कारण वे कथञ्चित् नित्य हैं और अपने स्वरूप में स्थित हैं। अगुरुलघु गुण के कारण उन कालाणुओं में प्रति समय परिणमन होता रहता है तथा पर पदार्थ के सम्बन्ध से वे विकारी हो जाते हैं इसलिए पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथञ्चित् अनित्य भी हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान रूप तीन प्रकार के समय का कारण होने से वे कालाणु तीन प्रकार के माने जाते हैं और अनन्त समयों के उत्पादक होने के कारण अनन्त भी कहे जाते हैं उन कारणभूत कालाणुओं से समय की उत्पति होती है; क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता। यदि असद्भूत कार्य की उत्पत्ति कारण के बिना स्वयं ही होती है तो फिर गधे के सींग की उत्पत्ति स्वयं क्योंकि नहीं जाती ? काल के सिवाय अन्य कारण से कालरूप कार्य की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि धान के बीज से कभी जौ का अंकुर उत्पन्न नहीं होता। जहां वहीं भिन्न जातीय कार्य उत्पादक होता है, वहां वह सहकारी कारण ही होता है कार्य की उत्पत्ति में मुख्य कारण उपादान है और सहकारी कारण उसका सहायक होता है। इस प्रकार युक्ति और आगम से निश्चयकाल की सिद्धि होती है।९

समय, निमेष, काष्ठा, कला, घड़ी, अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और वर्ष रूप जो (व्यवहार) काल है वह पराश्रित है।१० अधिक काल अथवा अल्पकाल ऐसा ज्ञान काल के माप बिना नहीं होता और वह परिमाण पुद्गल द्रव्य के बिना नहीं होता इसलिए व्यवहार काल पर का आश्रय करके उत्पन्न होता है। ११ यद्यपि रत्नों की राशि में पड़े प्रत्येक रत्न के समान काल का प्रत्येक क्षण अलग-अलग है तो भी व्यावहारिक दृष्टि से इसके भी विभाग किए गए हैं। सर्वजघन्य गति से परिणाम को प्राप्त हुआ परमाणु जितने समय में अपने द्वारा स्वकीय प्रदेश का उल्लंघन करती है उतने समय को

---

९. जिनसेन : हरिवंश पुराण ७।२-१५

१०. पंचास्तिकाय गाथा २५

११. णत्थि चिरं वाखिप्पं मत्तारहिदं तु साविखलु मत्ता।
पोग्गल दव्वेण विपण तम्हा कालो पडुच्चभवो॥
पंचास्तिकाय गाथा २६

आचार्यों ने समय कहा है। यह समय अविभागी होता है तथा पर की मान्यताओं को रोकनेवाला होता है। १२ जब इतने अधिक समय बीत जाते हैं कि उनको गिनना कठिन हो जाता है तो समय के प्रमाण की व्यवस्था करने वाले विद्वान् उस अन्तराल को आवलिका अथवा आवली संज्ञा देते हैं। किन्हीं आचार्यों का यह भी मत है कि गणना से परे (असंख्यात) आवलियों के व्यतीत हो जाने पर एक स्तोक होता है। सात स्तोक समय बीत जाने पर एकलव होता है। अड़तीस लवों से कुछ अधिक समय बीत जाने पर एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त दो घड़ी के बराबर होता है। एक दिन तथा रात्रि में कुल मिलाकर तीस मुहूर्त होते हैं। पन्द्रह दिन रात का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक मास होता है। एक ऋतु में दो मास होते हैं। तीन ऋतुयें बीत जाने पर एक अयन होता है। दो अयनों का एक वर्ष होता है। १३ पांच वर्षों का एक युग होता है। दो युगों के दश वर्ष होते हैं, इसमें दश का गुणा करने पर हजार वर्ष होते हैं। इसमें दश का गुणा करने पर दश हजार वर्ष होते हैं। इसमें दश का गुणा करने पर एक लाख वर्ष होते हैं। एक लाख वर्ष में चौरासी का गुणा करने पर एक पूर्वाङ्ग होता है। चौरासी लाख पूर्वाङ्गों का एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्वों का एक नियुताङ्ग, चौरासी लाख नियुताङ्गों का एक नियुत, चौरासी लाख नियुतों का एक कुमुदाङ्ग, चौरासी लाख कुमुदाङ्गों का एक कुमुद, चौरासी लाख कुमुदों का एक पद्माङ्ग, चौरासी लाख पद्माङ्गों का एक पद्म, चौरासी लाख पद्मों का एक नलिनाङ्ग, चौरासी लाख नलिनाङ्गों का एक नलिन, चौरासी लाख नलिनों का एक कमलाङ्ग, चौरासी लाख कमलाङ्गों का एक कमल, चौरासी लाख कमलों का एक तुट्याङ्ग, चौरासी लाख तुट्याङ्गों का एक तुट्य, चौरासी लाख तुट्यों का एक अट्टाङ्ग, चौरासी लाख अट्टाङ्गों का एक अट्ट, चौरासी लाख अट्टों का एक अममाङ्ग, चौरासी लाख अममाङ्गों का एक अमम, चौरासी लाख अममों का एक ऊहाङ्ग, चौरासी लाख ऊहाङ्गों का एक ऊह, चौरासी लाख ऊहाङ्गों का एक लताङ्ग, चौरासी लाख लताङ्गों की एक लता, चौरासी लाख लताङ्गों की एक लता, चौरासी लाख लताङ्गों का एक महलिताङ्ग, चौरासी लाख महालताङ्गों की एक महालता, चौरासी लाख महालताओं का एक शिरः प्रकम्पित, चौरासी लाख शिरः प्रकम्पितों की

---

१२. हरिवंशपुराण ७।१६-१८

१३. जटासिंह नन्दि : वराङ्गचरित २७।३-६

एक हस्त प्रहेलिका और चौरासी लाख प्रहेलिकाओं की एक चर्चिका होती है। इस प्रकार चर्चिका आदि को लेकर संख्यात काल कहा गया है। जो वर्षों की सख्या से रहित है वह असंख्येय काल माना जाता है। इसके पल्य, सागर, कल्प तथा अनन्त आदि अनेक भेद हैं। १४

एक ऐसा गर्त बनाया जाय जो एक योजन प्रमाण बराबर लम्बा चौड़ा तथा गहरा हो। जिसकी परिधि इससे कुछ अधिक तिगुनी हो तथा जिसके चारों तरफ दीवालें बनाई गई हों। इस क्षेत्र को एक से लेकर सात दिन तक की भेड़ के बालों के ऐसे टुकड़ों से जिनके कि टुकड़े न हो सकें, ऊपर तक कूट-कूटकर भरा जाय। इस गर्त को व्यवहार पल्य कहते हैं। सौ-सौ वर्ष बाद एक-एक बाल का टुकड़ा उस गर्त से निकालने पर जितने समय में वह खाली हो जाय उतने समय को व्यवहारपल्योपम काल कहते हैं। तदनन्तर उन्हीं बाल के टुकड़ों में प्रत्येक टुकड़े के असंख्यात करोड़ वर्षों में जितने समय हैं उतने टुकड़े बुद्धि से कल्पित टुकड़ों से पूर्वोक्त प्रमाण वाले गर्त को भरा जाय। इस भरे हुए गर्त को उद्धारपल्य कहते हैं और एक-एक समय में एक-एक टुकड़ा निकालने पर जितने समय में वह गर्त खाली हो जाय उतने समय को उद्धारपल्योपम काल कहते हैं। दशकोड़ाकोड़ी उद्धारपल्यों का एक उद्धारसागर होता है और ढाई उद्धारसागरोपम काल अथवा पच्चीस कोड़ा-कोड़ी उद्धारपल्यों के बालों जितने टुकड़े हों उतने द्वीप सागरों का प्रमाण द्वीपसागरों का जो एक अथवा अर्थात एक दिशा का विस्तार है उसे दुगुना करने पर रज्जु का प्रमाण निकलता है। यह रज्जू दोनों दिशाओं के तनुवात-वलय के अन्तभाग को स्पर्श करती है। इसके द्वारा तीनों लोकों का प्रमाण निकाला जाता है। उद्धारपल्य के रोमखण्डों के असंख्यात करोड़ वर्षों के समय बराबर बुद्धि द्वारा कल्पित खण्ड किए जावें और उनसे पूर्वोक्त गर्त को भरा जाय इस गर्त को अद्धापल्य कहते हैं। उनमें से एक-एक समय बाद एक-एक टुकड़ा निकालने पर जितने समय में वह खाली हो जाय उतने समय को अद्धापल्योपम काल कहते हैं। आयु का प्रमाण बतलाने के लिए इसका उपयोग होता है। दश कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक अद्धासागर होता है। इसके द्वारा संसारी जीवों की आयु, कर्म तथा संसार की स्थिति जानी जाती है। दशकोड़ा कोड़ी अद्धासागरों की एक अवसर्पिणी तथा उतने ही सागरों की एक उत्सर्पिणी होती है। इनमें से प्रत्येक के छह-छह भेद हैं। जिसमें

१४. हरिवंश पुराण ४।२२—३१

वस्तुओं की शक्ति क्रम से घटती जाती है उसे अवसर्पिणी, जिसमें बढ़ती जाती है उसे उत्सर्पिणी कहते हैं। इसका अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम सार्थक है। १. सुषमा सुषमा २. सुषमा ३. सुषमा दुषमा ४. दुषमा सुषमा ५. दु:षमा और ६. दु:षमा दु:षमा ये अवसर्पिणी के छह भेद हैं। और इनसे उल्टे अर्थात् १. दुषमा दुषमा २. दुषमा ३. दुषमा दुषमा ४. दु:षमा सुषमा ५. सुषमा सुषमा ये छह उत्सर्पिणा के भेद हैं। प्रारम्भ के तीन कालों का प्रमाण क्रम से चार कोड़ाकोड़ी सागर और दो कोडाकोड़ी सागर है। चौथे काल का प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोडी सागर है। पाचवें तथा छठे काल का प्रमाण इक्कीस इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है। जिस प्रकार दश कोड़ाकोड़ी सागर का अवसर्पिणी काल है उसी प्रकार दश कोडाकोड़ी सागर का उत्सर्पिणी काल है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों मिलकर कल्पकाल कहलाते हैं। इन दोनों कालों के समय भरत, ऐरावत क्षेत्र में पदार्थों की स्थिति हानि और वृद्धि को लिए हुए होती है। इन दो क्षेत्रों के सिवाय अन्य क्षेत्रों में पदार्थों की स्थिति हानि वृद्धि से रहित अवस्थित है।१५

प्रश्न—क्रियामात्र ही काल है, उससे भिन्न नहीं। क्रिया स्वयं परिच्छिन्न होकर अन्य द्रव्यों के परिच्छेद में कारण होती है अतः वही काल है। परमाणु की परिवर्तन क्रिया का समय यही समय कहा जाता है, समय के परिमाण को मापनेवाला कोई दूसरा सूक्ष्मकाल नहीं है। समय क्रिया का समुदाय आवलिका, आवलिका का समुदाय उच्छ्वास आदि में उच्छ्वास के मापने में आवलिका क्रिया काल है और आवलिका में परमाणु क्रिया रूप समय काल है। इसी तरह आगे भी समझना चाहिए। लोकव्यवहार में भी गोदोहनकाल, रसोई का समय आदि काल व्यवहार क्रियामूलक ही हैं। एक क्रिया से दूसरी क्रिया परिच्छिन्न होती हुई कालसंज्ञा प्राप्त करती है।

उत्तर—ठीक है, क्रियाकृत ही यह व्यवहार होता है कि उच्छ्वासमात्र में क्रिया, मुहूर्त में क्रिया आदि परन्तु उच्छ्वास, निश्वास, मुहुर्त आदि संज्ञाओं को कालव्यपदेश बिना किसी कारण के नहीं हो जाता। उसका कारण काल है, अन्यथा काल व्यवहार का लोप हो जायगा। जैसे देवदत्त में दण्डी यह व्यपदेश अकस्मात नहीं होता किन्तु उसका कारण दण्ड का सम्बन्ध है उसी तरह उक्त व्यवहारों में कालव्यपदेश के लिए काल द्रव्य मानना आवश्यक है।

क्रियामात्र को काल मानने में वर्तमान का अभाव हो जायगा। पट बुनते

---

१५. हरिवंशपुराण ७।३२-६३

समय जो तन्तु बुना गया वह तो अतीत हो गया तथा जो बुना जायगा वह अनागत होगा इन दोनों के बीच में कोई अनतिक्रान्त और अनागामिनी क्रिया है ही नहीं जिसे वर्तमान कहा जाय। अतीत और अनागत व्यवहार भी वर्तमान की अपेक्षा होता है अतः वर्तमान के अभाव में उनका भी अभाव हो जायगा। प्रारम्भ से लेकर कार्यसमाप्ति तक होने वाली क्रियाओं का समूह वर्तमान है, यह पक्ष भी ठीक नहीं है! क्योंकि इसमें प्रतिज्ञाविरोध आता है। पहले आने क्रिया को काल कहा था और अब क्रियासमूह को काल कहते हो। क्षणिक क्रियाओं का समूह भी नहीं बन सकता। जो वर्तनालक्षण मानते हैं. उनके मत में तो प्रथम समय वाली क्रिया की वर्तना से प्रारम्भ करके द्वितीय आदि समयवर्ती क्रियाओं की द्रव्यदृष्टि से स्थिति मानकर समूह कल्पना कर ली जाती है और उस क्रियासमूह से बननेवाले घटादि की समाप्ति तक घट क्रिया हो रही है यह वर्तमानकालिक प्रयोग कर दिया जाता है। यदि भिन्न रूप से उपलब्ध न होने के कारण काल का अभाव किया जाता है तो क्रिया और क्रियासमूह का भी अभाव हो जायगा। कारकों की प्रवृत्ति विशेष को क्रिया कहते हैं। प्रवृत्ति विशेष भी कारकों से भिन्न उपलब्ध नहीं होता जैसे टेढ़ापन सर्प से जुदा नहीं है उसी तरह क्रियावयवों से भिन्न कोई क्रिया नहीं है अतः क्रिया और क्रियासमूह दोनों का अभाव ही हो जायगा। क्रिया से क्रियान्तर का परिच्छेद भी नहीं हो सकता; क्योंकि स्थिर प्रस्थ आदि से ही स्थिर ही गेहूं आदि का परिच्छेद देखा जाता है परन्तु जब क्रिया क्षणमात्र ठहरती है तो उससे अन्य क्रियाओं का परिच्छेद कैसे किया जा सकता है? स्वयं अनवस्थित पदार्थ अन्य अनवस्थित का परिच्छेदक नहीं देखा गया। प्रदीप अनवस्थित होकर अनवस्थित परिस्पन्द का परिच्छेदक होता है तभी तो प्रदीपवत् परिस्पन्दः यह प्रयोग होता है, यह कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि प्रदीप या परिस्पन्द को हम सर्वथा क्षणिक नहीं मानते। कारण कि उसके प्रकाशन आदि कार्य अनेकक्षण साध्य होते हैं। समूह में परिच्छेद परिच्छेदक भाव भी नहीं बनता; क्योंकि क्षणिकों का समूह ही नहीं बन सकता है।

१६ अकलंक देवः तत्त्वार्थवार्तिक ५।२२।२०-२७

वीर प्रभो की वाणी ही दानवता बदलेगी

□ श्री कल्याण कुमार 'शशि'

पनप रही हिंसक प्रवृतियां, जग में आग लगी है
दानवता विकराल रूप, धारण कर आज जगी है,
विश्व शांति के आकर्षण से जग में महाठगी है,
अन्तरंग में विध्वंसों की दावानल सुलगी है,
पता नहीं कितने अनिष्ट, आगे और करेगी,
महावीर के संदेशों से जग को शान्ति मिलेगी।

महावीर ने हिंस-वृत्ति को, सात्विक मोड़ दिया था,
मानव का सम्बन्ध, अहिंसा, पथ से जोड़ दिया था,
त्रस्त जगत को परमशान्ति की, सुखद स्वांस आई थी,
करुणा दया अहिंसा की, आभा जग पर छाई थी,
वीर प्रभो की वाणी ही दानवता को वदलेगी।

विश्वशान्ति की कपटी रना, दुनियाँ व्यर्थ रहेगी,
किन्तु इस तरह छल प्रपंच की खाई नहीं पटेगी,
वंधी हुई अणु को आँखों पर, हिंसा की पट्टी है,
मुख में शान्ति, वगल में धोखे की टट्टी है,
यह कागज की नाव सिन्धु में कवतक और टिकेगी,
वीर प्रभोकी वाणी ही दानवता को वदलेगी।

ऊपर ऊपर विश्वशान्ति का ध्रुव प्रयत्न जारी हैं,
अन्दर अन्दर विश्वविनाशक रण की तैयारी है,
मित्रवंश में शत्रु कोन है, यह पहिचान कठिन है,
हिंसा हत्या रक्तपात के वातावरण मलिन हैं,
ऐसी निर्मम दानवता की धारा कहां रुकेगी,
वीर प्रभो की वाणी ही दानवता को वदलेगी।

तिजोरी की चाबी

श्री मोती लाल सुराना

प्रवचन सुनने आये सेठजी। आसन बिछाकर नीचे बैठे तो कमर में बंधी चाबी टकराई फरश से।

यह कैसी आवाज आई ? क्या कुछ गिरा है सेठजी ! प्रवचन रोककर साधुजी ने पूछा, नही महाराज जी सेठ ने कहा कदीरे में चाबी बंधी है। वह बैंठते समय फरश से टकरा गई।

कंत्रीर में चाबी बंधी है और चाबी में आप बँधे हैं, हैं न सेठजी ! महाराजजी बोले। सेठजी क्या कहते ? जी हजूर कह कर चुप हो गए। पर साधुजी चुप होने वाले कब थे। बोले आपके पास यह चाबी कब से है ? सेठजी बोले तीस पैंतीस साल से। पिताजी स्वर्गवास से पहने मुझे दे गए थे।

उस समय उनकी उमर ६०साल के करीब तो होगी। महाराज ने पूछा — और आपकी उमर क्या है ?

यही ६५ साल के करीब सेठजी ने उत्तर दिया। तो आप अपने लड़के को यह चाबी कब इरादा रखते हैं ? क्या अब भी निवृति की इच्छा नहीं होती ? साधुजी ने प्रश्न किया। सेठजी ने इस बारे में कोई जवाब नहीं दिया तो साधुजी ने पूछा आपके पिताजी को उनके पिताजी ने चाबी कब दी थी, कुछ बतला सकते हैं ?

जी पिताजी कहा करते थे कि उनके पिताजी तो ४० साल की उमर में ही प्लेग से स्वंगवासी हो गये थे ? सेठजी ने कहा।

प्रवचन का समय समाप्त होते देख साधुजी ने कहा--यह मत समझिये कि यह बात मेरी केवल सेठजी से ही हो रही है। यह सब प्रवचन का ही अंश है। तिजोरी की चाबी का ५०,६० साल की वय के बाद तो मोह छोड ही देना चाहिये आप अब मोह की जीतोगे तभी तो निवृत्ति की ओर झुक सकोगे और जब तक निवृत्ति के पथ पर अग्रसर न न होवेंगे तब तक जीवन सफल बना सकोगे ?

२५०० वे वीर निर्वाण महोत्सव के अवसर पर भगवान महावीर की वाणी के अनुसार अपना जीवन डालोगे तो निश्चित कल्याण होगा।

आगम-पथ नवम्बर १९७४

महात्मा बुद्ध एवं उनका वंश क्या जैन श्रमण संस्कृति के पालक रहे थे ?

—वैद्य प्रकाश चंद्र 'पांड्या'

प्राय: यह सभी जानते हैं कि भगवान बुद्ध का जन्म शाक्यवंश में कपिल-वस्तु के राजा शुद्धोधन के यहाँ ई० पु० ६२४ के करीव हुआ था। भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म चलाया था किन्तु इससे पूर्व वे किस धर्म को मानते थे ? उनका वंश किस संस्कृति को मानता था एवं पोषक था ? यह विचारणीय प्रश्न है।

भगवान बुद्ध के जन्म से करीव २२५ वर्ष पहिले तेईसवें जैन तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ हुए थे। उन्होंने उस समय के समस्त आर्य खंड में अपना धर्म प्रचार किया था। उसमें शाक देश का भी नामोल्लेख है। भगवान बुद्ध

भगवान महावीर से पहले जैन धर्म विद्यमान था ही और जैनों के अति-रिक्त किसी भी अन्य प्राचीन भारतीय दर्शन में स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति-पादन करने का उल्लेख नहीं है। दीर्घनिकाय सामज्जफल सूत्र में उन प्रवर्तकों के नाम मिलते हैं जो महात्माबुद्ध के पहिले विद्यमान थे—।

का जन्म शाक्यभूमि में ही हुआ था। यह प्रदेश नेपाल की तराई में था। नेपाल की कथानक से यह भी प्रगट होता है कि भगवान पार्श्व का आगमन यहां हुआ था। ये पार्श्व (कश्यप बुद्ध के नाम से प्रचलित) बनारस से आये थे और स्वयं भू मँदिर में रहकर उपदेश दिया था। फिर वह गौड देश (बंगाल) को चले गये थे। इससे यह प्रगट होता है कि शाक देश में जैन धर्म का प्रचार था अथवा हुआ था।

भगवान बुद्ध के पितृगण जैन श्रमण थे। क्योंकि, जिस समय भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था उस समय एक अजित नामक श्रमण ऋषि में उनको देखकर आशीर्वाद दिया था। २ इसके बाद भी जब म० बुद्ध कपिलवस्तु से बाहर आये थे तब भी उनको एक श्रमण के दर्शन हुए थे। ३ ये श्रमण बौद्ध भिक्षु तो हो नहीं सकते क्योंकि समय बौद्ध धर्म का अस्तित्व ही नहीं था। ४ श्रमण शब्द जैन परम्परा का है और वह आज तक मूल में सुरक्षित है।

'मुमुक्षः श्रमणों यतिः—अभियान चिंतामणि १७, ५

यदि देखा जाय तो श्रमण संस्कृति का आदि प्रवर्तक धर्म जैन धर्म ही है श्री मद्‌भागवत में मरू देवी तथा नाभि राजा के पुत्र ऋषभ को वहिरज्ञान श्रमणों के धर्म प्रवंतक कहे नये हैं। ५ कल्पसूत्र में जैन धर्म को 'श्रमण' धर्म ही कहा गया है। ६ ऋग्वेद में ऐसे श्रमणों का उल्लेख है जो यज्ञों में होने वाली हिंसा का विरोध करते थे। ७ ये श्रमण जैनों के सिवाय और कोई नहीं हो सकने क्योंकि जैन धर्म स्पष्ट रीति से यज्ञों में होने वाली हिंसा का विरोधी प्रारम्भ रहा है।८

शाक्यवंश श्रमण संस्कृति के पोषक थे और श्रमण कहलाते थे और श्रमण कहलाते थे। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने शाक्यपुत्र या वुद्ध देव के अनुयायी श्रमण या साधु शाक्य पुत्रीय और म० महावीर या नातपुत्र के अनुयायी साधुनात पुत्रीय (ज्ञातृ पुत्रीय) कहा है। बुद्धऔर महावीर से पहिले 'श्रमण' धर्म जैन धर्म ही था और बुद्ध के पितृगण 'श्रमण' भक्त थे। 'बौद्ध ग्रन्थ' 'ललितविस्तर' में ऐसा आया है कि म० बुद्ध अपने बाल्यकाल में श्री वत्स, स्वास्तिका, तधावर्त और वर्द्धमान, ये चिह्न अपने शीश पर धारण करते थे, जिनमें पहले के ती चिन्ह तो क्रमशः शीतलनाथ, सुपार्श्व-नाथ और अरहनाथ नाम जैन तीर्थंकरों के चिह्न हैं और अन्तिम वर्द्धमान भगवान महावीर का नाम है। इसके अतिरिक्त अंगु-तर निकाय (३, ३७३) वौद्ध आगम ग्रन्थों में प्रत्येक बुद्ध के अन्तर्गत अजित सुपिय, पदुम, चद, विमल और धम्म इन छह तीर्थंकरों का वुद्ध के रूप में उल्लेख किया गया है। कहीं वे 'कृषि देवता' कहीं 'वर्षा सा देवता', कहीं सूर्य देव' कहीं आद्य प्रजा-पति' कहीं 'वनस्पति' के देवता कहीं फिर देव के अवतार के रूप में माने और पूजे जाते हैं। १० मु० बुद्ध ने स्वयं अपने मुख से एक स्थान पर जैन मुनि होना स्वीकार किया है।

श्री पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में विशेष प्रख्यात मुनि विहिताश्रव मिलते हैं। दिगम्बर जैन शास्त्रों में इनका विविध स्थानों पर उल्लेख है। श्वेताम्बर यती आत्माराम जी ने श्री प्रभासूर्य को पार्श्वनाथ जी की शिष्य परम्परा में स्वीकार कर पिहिताश्रव (बुद्धि कीर्ति) को एक वहुश्रुती शिव बतलाया है जिन्होंने भ्रष्ट होकर क्षणिकवाद का प्रचार किया था। १२ यह बुद्धि कीर्ति बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध के अतिरिक्त कोई व्यक्ति नहीं थे। १३ आचार्य देवसेन ने यह बतलाया है कि बुद्ध पिहिताश्रव नामक मुनि के शिष्य थे जिन्होंने बुद्ध को पार्श्वनाथ परम्परा में दीक्षित

किया और बुद्ध कीर्ति का नाम रखा। परन्तु कुछ समय वाद मत्स्य मासादि के भक्षण कर लेने से उन्हें सवसे वाहर होना पड़ा और लाल कपड़े पहिन कर उन्होंने अपना पृथक धर्म स्थापित किया। इसे ही कालांतर में वौद्ध धर्म कहा जाने लगा। १४ भ० बुद्ध मांस भोजन किया ही करते थे। ५५ अत: भ० बुद्ध के जन्म समय' अजित नामक श्रमण साधु द्वारा दिया हुआ आशीर्वाद जैन मुनि ने ही दिया था और राजा शुद्धोधन उन जैन श्रमणों के भक्त थे। १६ वे श्रमण संस्कृति को मानने वाले थे। क्योंकि, नामों के आधार पर भी संस्कृति विशेष का ज्ञान होता है। भ० बुद्ध के पिता शुद्धोद्धन (शुद्धि ओदन=भात भोजन खाने वाले) सिद्धार्थ सिद्ध हो गया है अर्थ-प्रयोजन-मुक्ति प्राप्ति जिसका) महामाया संसार भ्रमण में महिलाओं के कारण मानकर उन्हें माया आदि जैसे शव्द का—प्रयोग का किया गया है।) आदि ऐसे नाम हैं जिनसे आभासित होता है कि वे जैन धर्म के पालक रहे होंगे। १७

लिच्छवि और वल्लिगणों में पार्श्वनाथ का धर्म पर्याप्त रूप से लोकप्रिय हो गया था बुद्ध का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। कालित्रिपिटक में बुद्ध ने सभी सम्प्रदायों की कडी आलोचना की परन्तु नीगठन।तपुत्र के प्रति उन्होंने विशेष आदर प्रदर्शित किया। १८ दीर्घानिकाय में अचेल कम्लय के नाम पर कुछ ऐसी समस्याओं के रूपों का उल्लेख मिला है जिनको श्रमण वाह्य-माण अपनाये हुए थे। १९ मज्भिम निकाय में कहा गया है कि इन्हीं सभी तपस्याओं को भ० बुद्ध ने वोधि प्राप्ति के पूर्व अभ्यास किया था।२० यह सव वातें भ० बुद्ध का मूल जैंन धर्म में दीक्षित रहने की पुष्टि करती है।

महावग्ग २१ में लिखी है कि बुद्ध राजगृह में जव पहिले पहिल धर्म प्रचार को आये तो लाठी वन में 'सुप्पतित्य' के मंदिर में ठहरे। इसके वाद इस मन्दिर में ठहरने का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इस जैन मन्दिर के प्रबन्धकों ने यह जान लिया कि भ० बुद्ध अब जैन मुनि न ही रहे अत: उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया।२२

भ० महावीर से पहिले जैन धर्म विद्यमान था ही और जैनों के अति-रिक्त किसी भी अन्य प्राचीन भारतीय दर्शन में स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति-पादन करने का उल्लेख नहीं है। दीर्घनिकाय सामज्जफल सूत्र में उन प्रवर्तकों के नाम मिलते हैं जो भ० बुद्ध के पहिले विद्यमान थे। उनमें एक संजय

वैरश्री पुत्र भी था जिसकी शिक्षा जैन सिद्धान्त स्याद्वाद का विकृत रूप है। २३ किन्तु स्याद्वाद की पृष्ठ भूमि तैयार करने में वास्तविक श्रेय संजय को नहीं है। स्याद्वाद के बीज औपनिषदिक साहित्य २४ एवं अन्य दार्शनिक ग्रन्थों २५ में प्राप्य है। संजय और विजय दोनों चारण (आकाश गामी) जैन मुनि थे और वे भगवान महावीर के जन्म समय तक विद्यमान थे। इनको किसी प्रकार का सैद्धान्तिक संशय विद्यमान हो गया था, जिसका समाधान भगवान महावीर के दर्शन करते ही हो गया था। २६ बौद्ध शास्त्रों में भी संजय नामक मत प्रवर्तक का उल्लेख है और उनके शिष्य मौद्धलायन एवं सारी पुत्र बतलाय हैं। २७ मौद्धलाइन जैन मुनि थे। श्री अमितगति आचार्य ने मौडिलायन अथवा मौद्धलायन नामक तपस्वी को पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में बतलाया है। उसने महावीर भगवान से रुष्ट होकर बुद्ध दर्शन को चलाया था और शुद्धोधन के पुत्र बुद्ध को परमात्मा माना था। २८ मौद्धलायन को ही यदि बौद्ध धर्म का प्रवर्नक कहा जाय तो इसमें अत्युक्ति नहीं है। इनके गुरु संजय बताये जाते हैं। जब स्वयं मौद्धलायन जैन मुनि थे, तो उनके गुरु भी जैन मुनि होना चाहिए।...संजय की जो शिक्षाएँ बौद्ध शास्त्रों में अंकित है। २९ वह जैनियों के स्याद्वाद सिद्धान्त की विकृत रूपान्तर ही है—इस स्याद्वाद को संजव ने पार्श्वनाथ का शिष्यपरम्परा से सीखा था। संजय का दीघनख परिव्राजक नामक भतीजा था। ३० उसने भी संजय का अनुसरण किया था। उसके सिद्धान्त में जैन दर्शन का अनेकाँत पक्ष मिलता है। ३१ अतः बौद्धों के मौद्धलायन को एक समय जैन मुनि मानना उचित है और उनके गुरु संजय का जैन होना भी ठीक लगता है जो कि म० बुद्ध से सम्बन्धित रहे हैं।

भ० महावीर के समयः—

म० बुद्ध का जन्म ६२४ ई० पू० और म० महावीर का ६०० ई० पू० माना जाता है। अर्थात जब म० बुद्ध २४ वर्ष के थे तब महावीर का जन्म हुआ। म० बुद्ध ने २९ वर्ष की अवस्था में प्रवृल्या ग्रहण की थी। इसके बाद ही धर्मप्रचार प्रारम्भ किया था। इससे पहिले वे पार्श्व मतीय ही रहे होंगे, क्योंकि उनके पिता जैसा कि बतलाया गया है श्रमण भक्त रहे थे। म० बुद्ध के समय श्री पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म की परम्परा (अहिंसा, सत्य, आस्तेय और अपरिग्रह) चल रही थी। ३ म० महावीर ने धर्मोपदेश

देना प्रारम्भ किया नहीं था। अतः नग्न श्रमण सासुओं में भ० बुद्ध ने धर्मोपदेश देकर बौद्ध बनाना प्रारम्भ कर दिया था। नेपाल में जब ये धर्मप्रचार के लिए गये तो तांत्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था।

नेपाल में गूढ़ और तांत्रिक नाम की एक बौद्ध धर्म की शाखा है। मि० हावरसन ने लिखा है कि इस शाखा में नग्न भाँति रहा करते थे। ३३ प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उस समय धर्म प्रचार कर रहे थे। आजीवक सम्प्रदाय का निकास जैन धर्म से ही हुआ था। ३४ और इसके साधु भी नग्न रहते थे। ३५ महावग्ग (७०-३) के अनुसार जब बौद्धों ने नंगे और भोजन पात्र हीन मनुष्यों को दीक्षित कर लिया तब उनकी आलोचना होने लगी और लोग कहने लगे कि बौद्ध भी 'तित्थियों' की तरह करने लगे। तित्थिय भ० बुद्ध और भ० महावीर से प्राचीन साधु और खासकर जैन साधु थे। ३६ कहने का तात्पर्य यह है कि भ० बुद्ध ने अपना उपदेश परम्परागत श्रमण धर्म के उपासकों में भी दिया था और उनको अपना शिष्य बनाया था। ऐसे उनके कई शिष्यों ने जो कि बौद्ध भिक्षु बन चुके थे, नग्नता धारण करने का आग्रह भी किया था। ३७ भ० बुद्ध ने नग्न वेश को बुरा नहीं बतलाया था किन्तु उससे ज्यादा शिष्य पाने का लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। ३८ इस प्रकार भ० बुद्ध ने अनेक शिष्य बनाये और बौद्ध धर्म धर्म का उत्थान होने लगा। इसे देखकर पार्श्व द्वारा स्थापित धार्मिक संघ वालों ने बौद्ध धर्म के उत्थान में बहुत सी अड़चने डालना प्रारम्भ कर दिया। ३९ भ० महावीर भी जब तक युवावस्था में पदार्पण कर चुके थे और धर्मोपदेश देने लगे थे। भ० महावीर और भ० बुद्ध दोनों ही अहिंसा धर्म का उपदेश देते किन्तु भ० महावीर की अहिंसा में मन, वचन, काम पूर्वक जीव हिंसा से विलग रहने का विधान था। भोजन या भोज खौक के लिए भी उसमें शीवों का प्राण सपरोप नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत भ० बुद्ध की अहिंसा में बौद्ध भिक्षुओं को मांस और मत्स्य ओर करने की खुली आज्ञा होती। अनेक बार स्वयं बुद्ध ने मांस भोजन किया। ४० ऐसे समग दिगम्बर मुनि उनको आड़े हाथों लेते। एक बार भ० महावीर ने बुद्ध के इस हिंसक कर्म का निषेध किया तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा—भिक्षुओ यह पहिला मौका नहीं है बल्कि नातपुत्र (महावीर) इससे पहिले भी कई मरताबाखास मेरे लिए पके हुए मास को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं। ४१ दूसरी बार वैशाली में भ० दुद्ध ने सेनापति

सिंह के घर पर मांसाहार किया। उसके लिए बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि 'निग्रन्थ' वड़ी संख्या में वैशाली में सड़क सड़क, चौराहे चौराहे पर यह शोर मचाते रहे कि आज सेनापति सिंह ने एक बैल का वध किया और उसका आहार श्रमण गौतम के लिए बनाया। श्रमण यह जानकर भी कि यह बैल मेरे आहार के निमित मारा है फिर भी उस पशु का मांस खाता है। अतः वही उस पशु के मारने के लिए वधक है। ४२ इस तरह भ० महावीर तथा उनके शिष्य बौद्धों की हंसी उड़ाया करते और विरोध में प्रचार करते। इन सब बातों के बावजूद भी बौद्ध भ० महावीर का आदर करते और उन्हें सर्वज्ञ मानते थे। ४३ हो सकता है कि इसका कारण वह रहा हो कि भ० बुद्ध की माता महामाव लिच्छवी वंश की थी और भ० महावीर की माता भी लिच्छवी वंश की थी। लिच्छवियों की ही एक शाखा ज्ञातृक्षत्रियों की थी जिसमें भ० महावीर का जन्म हुआ था। अतः भ० बुद्ध और भ० महावीर का वंश परम्परागत सम्बन्ध एक ही था। इसीलिए भ० बुद्ध ने लिच्छवियो के गुणों की बहुत प्रशंसा की है। लिच्छवी वंश काश्यप गौत्रीय भ० पार्श्व के अनुयायी थे जोकि श्रमण संस्कृति के पोषक थे। अतः यह निश्चित कहा जा सकता है कि भ० बुद्ध और भ० महावीर के वंश का परम्परागत सम्बन्ध आपस में था और दोनों के वंश एक ही श्रमण जैन संस्कृति के पोषक एवं पालक थे।

संकेत

१. भ० पार्श्वनाथ पृ० २३२

२. बुद्ध जीवन एस० वी० ई० X/X पृ० ११ एवं भ० पार्श्वनाथ पृ० ३१२

३. इन्डियन एन्टीक्वेरी भाग ९ पृ० २४६।

४. भ० पार्श्वनाथ पृ० ३१२ ले० कामता प्रसाद

५. मद्भागवत ५, ४, २०१

६. कल्प सूत्र स्टीवेसन पृ० ८३

७. ऋग्वेद ३—३, १४—२१

८। भ० पार्श्वनाथ पृ० २१ ले० कामता प्रसाद

९. जैन साहित्य और इतिहास पृ० ५०३

१०. इतिहास के आलोक में तीर्थंकर ले०—देवेन्द्र कुमार शास्त्री महावीर जयंती स्मारिका जयपुर ७४ पृ०—1, १७

११. सिद्धार्थ गौतम बुद्ध पृ० १५ एवं भ० पार्श्वनाथ पृ० ३११
१२. दर्शन सार पृ० ६—१०
१३. भ० पार्श्वनाथ पृ० ३११
१४. दर्शनसार पृ० ८६
१५. म० म० बुद्ध पृ० १७०
१६. भगवान महावीर और म० बुद्ध पृ० ३७, ३८
१७. महावीर और बुद्ध के व्यक्तिगत सम्पर्क ले०--भागचन्द जैन साहित्याचार्य, महावीर जयंति स्मारिका जयपुर १९६८ पृ० १७०
१८. तंत्र पतम्हाक स्थत्ति मेघ खमत्ति व तेन याविहं अन्तमना ति० मज्झिम निकाय प्रथम भाग पृ० ९३
१९- दीर्घ निकाय प्रथम भाग १६६
२०. मज्जिम निकाय प्रथम भाग पृ० ७७
२१: महावाग्ग-१।२२-२३ एस० ई० ८ पी० १४१
२२. म० म० बु० पृ० ५०-५१
२३. Dialogues of the Buddha-S B.B. Vol II एवं Samannaphal Sutta.
२४. बुवाणा भिन्न भिन्नाथति तय भेद मपेक्षया । प्रतिक्षिपेमुनी वेदः स्याद्वादं सार्वतत्रिकम् ॥-तपोपनिसद
२५. महाभारत अध्याय २ पाद २२ लोक ३३-३६
'सर्व संशयित मति स्याव्वादिनः सप्तभगीन यज्ञः । नीलकंठ ।
२६. उत्तर पुराण पृ० ६०८ और महावीर भरिन्त पृ० २५५
२७. महावग्ग १-२३-२४
२८. स्रटः श्री वीरनायस्य तपस्वी मौडिलायत ।
शिष्य : श्री पार्श्वनाथस्य विदधे बुद्ध दर्शनम् ॥
शुद्धोदनसुह बुद्ध परमात्मानम ब्रवीत ।
प्राणितः कुर्वते किं न कोप वैरिथराजित ॥ धर्मपरीक्षा अध्याय १४ अमितगतीआचार्य ।
२९. समक्कफल सुक्त डायोलाग्य आफ बुद्ध एस० बी० बी०
३०. डिक्सनरी आफ पाली प्रोपर नेमस
३१. अमराविस्टनेपवार और स्याद्वाद-ले० डा० भगाचन्द्रा, गुरु गोपालदास बैरया जैन स्मृति ग्रन्थ पृ० ३७६
३२. सागजफल सुत

३३. जैन सिद्धांत भास्कर १,२।३ पृ० २५
३४. वीर वर्ष ३ पृ० ३१२ त म म बु० पृ० १७—२१
३५. 'आजीविका नग्न समणको म पंच सुदनी । १-२०६।एच०क्यू० १११-२४
३६. जे० सि० भा० १।२।३।२४-२६ तथा । अगस्त १६३०
३७. म० म० बु० पृ० १०२-११०
३८. महावग्ग ८-२८ ।
३९. हार्मसवर्थ हिस्ट्री आफ दी वर्ड ३ भ० २ पृ० ११६२
४०. म० म० बु० पृ० १७०
४१. Cowll Jatakpar II 182
४२. Vinaya Texts. S.B,E. vol x VIII, p. 116 & HG p 85
४३. निग्रंथो आवसो नाथपुत्रों सवकदरस्सी ।
अपरिसेसे ण दस्सण परिजानाहि । मज्झिम निकाय वण । पृ० ६२-६३
अर्थात निग्रंथ नाथपुत्र महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है । वे संपूर्ण ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता है ।

प्रेरणा……

मधुर मंद मुस्कान
मुझे
महावीर मूर्ति से मिलती है
धर्म सुधा से
सिंची साधना
स्वतः शान्ति से
खिलती है ।

सुरेश 'सरल'
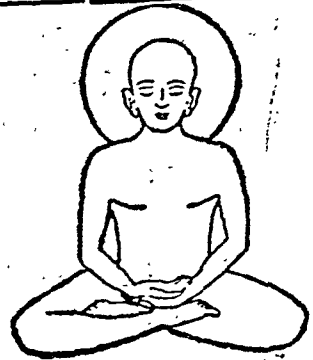
समाजवाद और अपरिग्रह

—श्री मोरारजी देसाई

अपरिग्रह और समाजवाद यदि अमल में नहीं लाया जाता तो उस पर चिंतन करना बेकार है, यदि धर्म का चिंतन किया जाए तो उसे अमल में भी लाना चाहिए। धर्म वही हैं जो अमल में लाया जावे जो विचार काम में न लाया जाए वह बेकार है यदि विचार कार्य में समन्वय व तादाम्य स्थापित न हो तो उस पर चिंतन करना बेकार ही होता हैं यदि धर्म का चिंतन करते है तो अच्छा होगा ही, यह अच्छा ज्यादा है कि उसे अमली जामा पहनाया जाए।

मनुष्य नास्तिक कैसे बनता है ? व्यक्ति मन्दिरों में जाकर पूजा करने के बाद अधर्म करता है उसका प्रभाव समाज पर बुरा पड़ता है और जो उसे देखते हैं उसकी धर्म में आस्था हटती जाती है। अतः वह नास्तिक हो जाता है।

यूं तो अपरिग्रह सभी धर्मों का आधार है। अपरिग्रह कहने से नहीं करने से होता है। समाज के सभी धर्मों के लिए अपरिग्रह के लिए अलग-अलग व्याख्याएं हैं। साधुओं के लिए अलग, गृहस्थों के लिए अलग। हमें व्याख्या करनी है अपने लिए न कि दूसरों के लिये। यह सभी बातें भगवान महावीर ने अच्छी तरह हमें समझाई थी। भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी जब हम मनाते हैं तो हमें खुशी होती है लेकिन वह तभी सफल हो सकती है जब हम अमल कितना करते हैं। उद्देश्य जितना अच्छा है उतना ही उसका पालन भी आवश्यक है।

अपरिग्रह के लिए प्रथम बात है कि इच्छा को जैसे चाहे मोड़े। बुरी इच्छा न करे यदि सद्इच्छा भी करे तो परिमित ही रखे।

अपरिग्रह की व्याख्या है कि कोई भी अपनी जरूरत से ज्यादा न रखे। सन्तों से लिये कहा है कि लंगोटी न पहने, या जैसा मिले वैसा खा लें। सर्दी और गर्मी में साधु, अपने को उसके अनुरूप ही बना लेता है, बुद्धि का अपरिग्रह, जिसमें मनुष्य उपयोगी होने की कोशिश करे व अपने को पवित्र रखे। साधुओं के परिग्रह का परिमाण दूसरा है।

गृहस्थी के लिये जितनी आवश्यकता हो उतना रखे बाकी छोड़ दें। लक्ष्मी और सरस्वती के बारे में कहा जाता है कि वे ऐसी हैं जिनका उपयोग करने से बढ़ती हैं तथा दबाकर रखने से घटती हैं लेकिन यहां पर उपयोग करने का अर्थ है परोपयोग।

अपरिग्रह और समाजवाद का क्या सम्बन्ध है ? अपरिग्रह के सिद्धान्त समाजवाद से भी आगे हैं। जहाँ समाजवाद की सीमा है उससे आगे अपरिग्रह है। समाजवाद अपरिग्रह में ही निहित है। अपरिग्रह का लक्ष्य भगवान व मनुष्य को एक बनाना है। धर्म क्या है ? धर्म एक है। मानव धर्म है कि मनुष्य-मनुष्य का शोषण न करे। समाज में ऊंच-नीच का भेद न हो। आर्थिक असमानताएं कम हों। मनुष्य-मनुष्य समाजवाद में समान होता है। इस प्रकार अपरिग्रह और समाजवाद का अटूट सम्बन्ध है। समाजवाद लोक तांत्रिक तरीके से ही आता है तानाशाही से नहीं।

तीर्थंकर महावीर और जैन आगम

□ श्री गणेश प्रसाद जैन, वाराणसी

मगध की भूमि

तीर्थंकर श्री महावीर और तथागत बुद्ध के जीवनकाल के हजारों-हजारों वर्षों पूर्व से "मगध' वैदिकों (आर्यों) के आधीन हो चुका था। 'ऋग्वेद' के तीसरे मण्डल के के ५६ वें २२ सूत्र के चौथे मन्त्र में और 'अथर्ववेद' के पांचवे काण्ड के २२वें सूत्र के १४ वें मंत्र में मगध का का वर्णन है। इनके अनुसार मगध का प्रथम शासक—"प्रपगंड" (कीकट) था। अभियान चिन्तामणि में "कीकट" को मगध लिखा है। "यास्क" ने निरुक्त (६-२२) में 'कीकट' को अनार्य लिखा है।

विन्ध्याचल—पर्वत और गंगा, चम्पा, और सोन नदियों के मध्य की भूमि में मागधों की बस्ती थी। मगध के प्राचीन राजधानी गिरव्रज की स्थापना "दृहद्रथ" ने की थी। नई राजधानी राजगृह से दूर पंच पहाड़ियों की सीमा के बाहर 'गया' के निकट थी। रोजडविड्स के कथानुसार उस समय मगध की परिधि २२००-२३०० मील की थी। वर्तमान गया और पटना जिलों में निहित प्रदेश उस समय मगध के अन्तर्गत थे।

यह सत्य है कि वैदिक पुरोहितों के प्रति मागधों को बिल्कुल श्रद्धा न थी। उन्होंने वैदिक देवताओं की सर्वोच्च-सत्ता में कभी श्रद्धान नहीं किया। इससे पुरोहित वर्ग जल उठा, और उन्होंने मगध-क्षेत्र को पवित्र घोषित करते हुए फतवा दे दिया—"मगध मरे सो गदहा होय"। आज भी वैदिक-धर्म में विश्वास रखने वाले अनेक अपना मरणकाल निकट जान मगध को त्याग गंगा के इस पार आकर बस जाते हैं।

'ऋग्वेद' से लेकर मनुस्मृति तक में उपरोक्त तथ्य देखे जा सकते हैं। ब्राह्मणों द्वारा रचित कोषों में मागध का अर्थ 'चारण या भाट' मिलता है। श्रोत्र सूत्र उन्हें ब्रह्मबन्धु की संज्ञा से विभूषित करता है। यहाँ तक की 'मागध' शब्द का अर्थ भी' 'वर्णशंकर' किया गया है। मनुस्मृति के ब्रह्मर्षि देशों में मगध की गणना नहीं की गयी

है।

किन्तु सन्त 'कबीर' को वैदिक पुरोहितों का फतवा गले के नीचे नहीं उतरा, वह तमक गये और कहा कि-- जो कबिरा काशीं मरे, तो रामहि कौन निहोरा" यह यथार्थ सत्य वाणी थी। किसी कवि ने भी इसी आशय की एक कविता रची है—अन्तिम पंक्ति में लिखता है—"बिना भक्ति किए तारो तब तारयो तुम्हारो है। अर्थात् मैंने भक्ति की, और आपने मुझे तार दिया। यह तो वनियो का व्यापार हुआ, हमने मूल्य दिया आपने सौदा तौल दिया। इसमें आपका कौन सा बड़प्पन या उदारता है, जो गुण-गान किया जाय। मान लीजिए हमने आपकी भक्ति नहीं की तो आप अप्रसन्न हो मुझे चौरासी लाख योनि में भटकते रहेंगे। फिर आप परमेश्वर अखिलेश्वर आदि को विरुद्ध छोड़ साधारण जन जीवन में आ जायें।

सबसे आश्चर्य की बात तो यह जो पुरोहित वर्ग मगध में मरने पर मुक्ति नहीं मानता, वही अपने व यजमानों का वहीं पितृ विसर्जन 'गया' जी में करा कर उन्हें चौरासी लाख यौनियों में भटकने व नर्कों के दुःखों से मुक्त करा देता है। "गया" का महत्व वैदिक शास्त्रों में इसी एक कारण से है।

यह सूर्यप्रकाश की तरह एक कटु सत्य है कि—अतीतातीत काल से भारत देश का पूर्वी-क्षेत्र (विशेष कर) श्रमण-संस्कृति (आर्हत-संस्कृति) का प्रमुख क्षेत्र रहा है। यहाँ की भाषा संस्कृति, साहित्य कला-कौशल आदि सभी कुछ अपने में पूर्ण और दूसरों को प्रभावित करने वाला रहा है। इसमें निजी मौलिकतायें है। इन मौलिकताओं की छाप दूसरों पर पड़ी हैं।

जैन-धर्म के बारहवे तीर्थंकर श्री वासुपूज्य स्वामी के पाँचों कल्याणक चम्पापुर (भागलपुर) में हुए हैं। वहां के मन्दारगिरि पर्वत से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया है। जैनों के २१ वें तीर्थंकर श्री नमिनाथ जी मिथला नरेश जनक (सीता जी के पिता) के पूर्वज थे। श्री नमिनाथ जी की अनासक्ति प्रवृत्ति ही जनक को विरासत में मिली थी।

२३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी की एतिहासिकता सभी इतिहासकारों ने एक स्वर से स्वीकार की है। वाराणसी नगर में जन्म हुआ था किन्तु मोक्ष विहार सम्मेदाचल (शिखर जी के सबसे ऊंची चोटी पर प्राप्त किया है, उन्हीं के नाम पर पहाड़ का नाम "पार्श्वनाथ पहाड़" और स्टेशन का पार्श्वनाथ स्टेशन है। शिखर जी

से अनेकों मुनियों ने सिद्ध-पद प्राप्त किया है।

मगध का शासन तन्त्र

महाभारत काल में मगध के सिंहासन पर बृहद्रथ' की नौवीं पीढ़ी में जरासन्ध था। जो अत्यन्त 'महत्वाकांक्षी चक्रवर्ती शासक था। उसने अंग-वंग, कलिंग सुह्च, तथा पुण्ड देशों को जीत कर वहाँ करद राजाओं की नियुक्ति की थी। निकटवर्ती जांगल जातियों की संघ-व्यवस्था को उसने छिन्न-भिन्नकर सबको वन्दी बना कारावास में डाल दिया था। उसने मथुरा के राजा अन्धक वृष्टि को पराजित कर वहां अपना शासन चला रक्खा था। श्रीकृष्ण ने नई राजधानी द्वारिका बसाई और पाण्डवों की सहायता प्राप्त कर भीम द्वारा जरासंघ को मल्लयुद्ध में मरवा डाला था। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपना प्रतिशोध जरासंघ से चुकाया था।

बृहद्रथ वंश के राजाओं ने ९४० वर्षों तक मगध का शासन सूत्र सम्हाला। अन्तिम राजा रिपुञ्जय था। उसके महा आमात्य 'पुलकि' ने राजा का बध करवा राज्य सिंहासन पर अपने बड़े पुत्र को विठा दिया। दूसरे पुत्र चण्ड-प्रद्योत (प्रदोत) को अवन्ति का राजा घोषित कर दिया। अवन्ति की शासन-व्यवस्था पुलकि ही अपने राजा रिपुञ्जय के आदेशानुसार करता था। प्रद्योत कुशाग्र बुद्धि होने के कारण अच्छा शासक प्रमाणित हुआ किन्तु उसका ज्येष्ठ भ्राता 'वालक' एक दम निकम्मा था। प्रजा ने विद्रोह कर उसे सिंहासन से उतार दिया था।

श्री भट्ट के 'हर्ष-चरित' के अनुसार महाकाल के मेले में महा मांस की बिक्री को लेकर बलवा हो गया। उस बलवे के मध्य भट्टिय (उप-श्रेणिक) ने तालजंग सैनिक द्वारा 'बालक' के राजा का बध करवा कर स्वयं राज सत्ता ग्रहण कर ली। भट्टिय का नाम 'शिशुनाग' था, इसी राजा से शिशुनाग वंश स्थापित हुआ है। भट्टिय ने अपने राजत्वकाल में एक भीलनी कन्या से बचन बद्ध होकर विवाह कर लिया था कि उसी की सन्तान राज्य सिंहासन की अधिकारी होगी। भीलनी-रानी का पुत्र चिलस्ती सर्वथा अयोग्य और चरित्रहीन था।

'श्रेणिक दूसरी पत्नी का पुत्र था। यह सभी बातों में दक्ष था। राज्य-दण्ड धारण करने की पूरी-पूरी योग्यता होने पर भी शिशुनाग ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए 'श्रेणिक' को देश निकाला देकर 'चिलाती को राज्य सिंहासन सौंप दिया था। प्रजा ने विद्रोह कर 'चिलाती' को सिंहासन च्युत कर दिया और दूर देश से 'श्रेणिक' को साथ लाकर सिंहासन

पर बिठाया। श्रेणिक सर्वश्रेष्ठ शासक प्रमाणित हुआ।

'श्रेणिक' का दूसरा नाम 'बिम्बसार' था। १५ वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा और ५२ वर्षों तक शासन सूत्र सम्हाला। २९ वर्ष की आयु में तथागत बुद्ध की अपने महलों में अभ्यर्थना करके बौद्ध धर्म स्वीकार किया। ३३ वर्ष की आयु में एक घटना घटी, जिससे उसे जैन मुनियों की तपस्या में आस्था हुई और वह जैन बना। महावीर की सबसे छोटी मौसी 'चेलना' श्रेणिक से विवाही थी। चेलना पटमहिषि थी। उसका पुत्र 'कुणिक' जो अजात शत्रु के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, अपने पिता से राज्य सत्ता छीन मगध का शासक बना। पिता को कारावास में डाल दिया था।

'श्रेणिक' ने पुत्र के अत्यवहार से दुःखी हो सिर पटककर कारावास में प्राण दे दिया था। महारानी-चेलना प्रव्रजित हो आर्यिका-व्रतपालन करने लगी थी कुणिक ने अपने नाना 'चेटक' जो गणतन्त्र अधिनायक थे, पर आक्रमण कर गणतन्त्र को भ्रष्ट और समाप्त कर दिया। उपरोक्त उद्दण्डताओं के कारण प्रजा के मन से वह उतर गया। अतः उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। सबसे उपेक्षित होते हुए भी उसने राज्य सीमा और कोषागार की अपरमित वृद्धि की।

किन्तु अजातशत्रु (कुणिक) का पुत्र उदयिभट्ट एक सुलझा व्यक्ति था। उसने पाटलिपुत्र (पटना) को राजधानी बनाया और नगर के मध्य विशाल जैन मन्दिर निर्माण कर जैन धर्म के प्रति अपनी आस्था का प्रचार किया। उदयिभट्ट के पश्चात् नंद राजाओं ने मगध का शासन किया। इनके महामात्य व शासन-परिषद के सदस्य जैन ही थे। प्रथम नंद राजा का प्रधान आमात्य 'कल्पक' जैन था? अन्तिम राजा का प्रधान महामात्य शकटाल भी जैन ही था।

'शकटाल' का ज्येष्ठ पुत्र स्थूलिभद्र मुनि हो गया था। मुद्राराक्षस नाटक तथा सम्राट खारिवेल के शिलालेखों से प्रमाणित है कि सभी नन्द राजे जैन धर्मावलम्बी थे। एक शिला लेख से प्रमाणित है कि नंद कलिंग विजय पश्चात् वहां के उपास्य देवतम आदि जैन श्री ऋषभ देव की मूर्ति को भी वह साथ में पाटली पुत्र ले आया था। नन्दों का भाग्य सूर्य उस समय मध्य आकाश में था। नन्दों के पश्चात् मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन छत्र चमका। इसने विदेशियों के आक्रमण से देश की रक्षा की थी।

'चन्द्रगुप्त' जैन सम्राटों में

अन्तिम था। पूर्वी भारत में १२ वर्षों का दुश्काल पड़ने से पूर्व वह आचार्य भद्रबाहुस्वामी से प्रवजित हो जैन मुनि बन चुका था। अकाल की सम्भावना जान आचार्यवर अपने १२००० बारह शिष्यों सहित दक्षिण भारत को चले गये थे। चन्द्रगुप्त भी साथ ले रहा कटवय पर्वत पर गुरु और शिष्य रुक गये, बाकी संघ परिभ्रमण के लिये आगे चला गया। गुरु की सेवा में रत रह मुनि (चन्द्र गुप्त) कठिन साधनाओं को साधता रहा। गुरु का वहां ही निर्वाण हो गया। चन्द्रगुप्त मुनि साधते हुए उसी पर्वत से मोक्ष पधारे पहाड़ी का नाम चन्द्रगिरि और उस गुफ का नाम चन्द्रगुफा उनके प्रति जन जन को श्रद्धा की द्योतक है। यह घटना ई० सन् से २९० वर्ष पूर्व की है।

'हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्ठ पर्व के लिखा है कि—"चाणक्य भी जीवन में अन्तिम शेष दिनों में जैन धर्मी हो गया था। इसी कारण उसके जीवन के उत्तरार्धकाल का वर्णन जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य कहीं प्राप्त नहीं होता है—

"श्री महावीर' को अपने प्रवज्याकाल में ही मुनियों के भ्रमण-स्थल की सीमा निर्धारित करनी पड़ी थी। आपने स्पष्ट आदेश दिया था कि—इस काल में निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को साकेत (अयोध्या) से पूर्व की ओर अंग तक, और दक्षिण में कौशाम्बी तक, पश्चिम में स्थूरम (थानेश्वर) तक और उत्तर में कुणाल तक ही परिभ्रमण (विहार) करना चाहिए। इन्हीं क्षेत्रों में इनके चरित्र अक्षुण्ण बने रह सकते हैं, अन्यत्र नहीं।

महावीर के उपरोक्त आदेश से स्पष्ट है कि उस काल में जैन साधुओं के बिहार क्षेत्र को विशेष कारणवश ही उन्हें सीमित करना पड़ा था, किन्तु सम्राट सम्प्रति के शासन काल में इतिहास ने एक अद्‌भुत मोड़ लिया। एक धार्मिक क्रान्ति हुई, और जैन श्रमण संध (मुनियों, आर्धिकाओं) के पर्यटन सीमा का विघटन हो गया।

सम्प्रति श्रेणिक-पुत्र नेत्रहीन 'कुणाल' का पुत्र था। सम्राट 'चन्द्रगुप्त' का पौत्र तथा विन्दुसार का प्रपौत्र था। वह महा प्रतापी शासक था। उसने आन्ध्र, द्रविड, महाराष्ट्र और कुड़क्क—(दुर्ग) आदि जैसे अनार्य देशों में श्रमणों के निर्द्वन्द विहार की व्यवस्था की थी।

श्री महावीर का युग :—

वह युग राजनीतिक उथल-पुथल का था। स्वार्थीजन धर्म की आड़ लेकर धर्मग्रन्थों की दुहाई देकर बहुसंख्यक प्रजा को पीस रहे थे। अपनी सत्ता से प्रजा का शोपण कर रहे थे।

पुरोहित वर्ग प्रभुसत्ता से अपने को सम्पन्न घोषित करता था। वह ईश्वर के आदेशों की दुहाई देकर प्रजा को नाना प्रकार से भ्रमा रहा था। युक्तियों द्वारा प्रजा ठगी जा रही थी। वर्ण व्यवस्था द्वारा समाज का संगठन छिन्न-भिन्न कर दिया गया था। नारियों का अस्तित्व केवल काम पिपासा की शान्ति के लिए ही माना जाता था। जहाँ-जहां बहुलता से पशुबलि के ताण्डव का कृत सम्पन्न होता रहता था। धनी जन अश्वमेघ, नरमेघ यज्ञ रचाते थे। धर्म की वेदी हिंसा के रक्त धारा द्वारा सदा प्लवित रहती थी। धर्म हिंसा, विषमता, प्रताड़न, निर्दलन आदि अत्याचारों का कवच बना था। धर्म स्वयं पीड़ित हो रुदन कर रहा था। तीर्थंकर श्री महावीर और तथागत बुद्ध इसी युग में जन्मे उन्होंने अत्याचारों के विघटन के लिए प्रवज्या ली। देशाटन कर धर्म का प्रसार किया और जनता को शाश्वत बनाया।

"श्री महावीर"—

महावीर का जन्म आज से २५७२ वर्ष पूर्व बिहार प्रदेश की तत्कालीन राजधानी वैशाली (बसाढ़) के एक उपनगर 'कुण्डपुर' के राज सिद्धार्थ की भार्यारानी त्रिशला देवी के गर्भ से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को प्रभात की मंगलवेला में हुआ।

राजा सिद्दार्थ काश्यप गोत्री ज्ञातृवंशीय क्षत्रीय थे। वंश परम्परा से यह लोग 'आर्हंत' धर्म के उपासक थे। इनके वंश में तीन श्रीपार्श्वनाथ के चतुर्याम की उपासना होती थी। माता त्रिशलादेवी जिनका शास्त्रों में दूसरा नाम विदहेदत्ता और प्रियकारिणी भी मिलता है, गणतन्त्र महा अधिनायक चेटक की ज्येष्ठा कन्या थीं। महाराजा चेटक की सात कन्यायें थीं, जो सभी उस युग के प्रधान राजाओं से विवाही थीं। अन्तिम सातवीं कन्या चेलना मगध सम्राट 'श्रेणिक' की पट्टमहिषी थी।

वज्जी संघ गणतन्त्र राज्य था। इसमें लिच्छवियों के साथ ज्ञातृ वंशीय क्षत्रिय भी गण राजा थे। ज्ञातृ वंशियों को 'नाथ या नात' भी कहा गया है। मनु महाराज वे मल्ल, लिच्छिवी, करण, खस, बदाविड़ आदि क्षत्रिय जातियों के साथ ज्ञातृ को भी गिना है। (मनु स्मृ १०-२२) व्रती होने के कारण इनकी संज्ञा व्रात्य थी।

नामकरण :—

महावीर के गर्भ में पधारने के छः मास पूर्व से कुण्डपुर से १२ योजन के मध्य नित्य प्रातःकाल रत्नों की आकाश से वर्षा होती थी। प्रजा व राज्य कोष में दिनों दिन अतिशय वृद्दि होती जा रही थी 'पिता सिद्धार्थ ने इसे नवजात पुत्र का पुण्य फल

माना, और उसका नाम वर्द्धमान (वृद्धि करने वाला) रख दिया था।

'वर्द्धमान' एक दिन समवयस्क बालकों के साथ उद्यान में खेल रहे थे तभी उनके मध्य एक सर्प आकर फुंफकारने लगा। साथी बालक आतंकित हो इधर-उधर भाग गये, किन्तु वर्द्धमान ने उस सर्प को कौतुहल पूर्वक हाथों में उठा उससे खेलने लगे। बहुत देर तक खेलने के पश्चात् उसे वृक्षों के झुरमुट में छोड़ दिया, उस दिन से लोग उन्हें 'वीर' कहने लगे।

दो चारणधारी मुनि आकाश मार्ग से वर्द्धमान के उद्यान में उतरे। उन्हें अपनी शंकायें निवृत्त करनी थीं। वर्द्धमान के दर्शनमात्र से उनकी शंकाओं का समाधान हो गया अतएवं उन्होंने उन्हें सन्मति के नाम से सम्बोधित किया। उस दिन से वह सन्मति के विरुद से सम्बोधित होने लगे।

२८ वर्षों की आयु तक घर में ही रह अनेक कठिन व्रतों की साधना करते रहे। उनकी साधनाओं से प्रभावित जन समाज उन्हें "अतिवीर" के उपाधि से पुकारने लगी: जनता में वही नाम प्रख्यात हो चला। इस प्रकार का वर्द्धमान का संसारिक जीवन के काल में ही चार नाम रक्खे गये और वे प्रचारित हो गए। १. वर्द्धमान, २. वीर, ३. सन्मति और ४. अतिवीर।

युवावस्था में वर्द्धमान ने प्रव्रज्या लेने का निर्णय कर माता के पास आज्ञा लेने के लिए गए। माता ने पूछा—क्याकहा ? प्रवजित होकर मुनि बनोगे ? याद रखना मैं अपने जीवन में दोबारा यह शब्द न सुनूं। महावीर अपने कक्ष में लौट आए और अपनी साधनाओं में और कठोरता बरतने लगे, माता की मृत्यु के पश्चात् अपने अग्रज से प्रवज्जा ग्रहण करने की अनुमति मांगी। अग्रज बोले माता पिता ने अपने मस्तक से अपनी छत्र साया उठा ली। अब तुम भी मुझे अकेला छोड़कर जाना चाहते हो। अग्रज मौन हो अपने कक्ष में लौट आये।

वर्द्धमान ने दोबारा भाई से कुछ नहीं कहा। किन्तु क्रम-क्रम उन्होंने अपनी स्थिति ऐसी बना ली कि उनके घर में रहने का आभास भी परिवार वालों को नहीं होता था। अतः बड़े भाई ने एक दिन उनसे कहा—"बन्धु, तुम प्रवजित होकर अपना तथा अन्य का कल्याण करना चाहते हो न ? जाओ, आनन्द पूर्वक अपनी मन्शा (मिशन) पूर्ण करो। 'धर्म' तुम्हारी सहायता करेगा। महावीर महलों का त्याग कर वन को चले गये।

मि० मगसर वदी १० को ३०

८ वर्ष की आयु में वन में जाकर वर्द्धमान ने अपने राजसी ठाठ के वस्त्रों आदि सब कुछ का त्याग कर दिया। आकिन्चन दिगम्वर वन कर अपने हाथ की मुट्टियों से अपने कुन्तल केशों को उखाड़-उखाड कर भूमि पर फेंकने लगे। जन मेदजी धन्य-धन्य कर उठी। 'वर्द्धमान' ने प्रव्रज्या ग्रहण करते हुए प्रतिज्ञा ली, "आज से सभी पाप कर्म मेरे लिए त्याज्य हैं। दैविक, मानुषिक, अथवा तिर्यक जातियों द्वारा जो भी वाधा व त्रास प्राप्त होंगे, उन्हें मैं विना किसी प्रकार के विरोव द्वारा अथवा विना किसी दूसरे प्राणी अथवा वस्तु की सहायता प्राप्त किये विना उन्हें समभाव से झेलूंगा। इसी प्रतिज्ञा के सम्वल-आचरण ने उन्हें अतिवीर से महावीर वना दिया।

१२ वर्षों की कठिन तपस्याओं से अव तक के कर्म-मलों का विघटन कर उन्होंने अपने अन्तर में जो ज्योति प्रकाशित की उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपने यथार्थ रूप में दर्शित होने लगा. सम्पूर्ण सृष्टि नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष थी। जैन शास्त्रों में इस अवस्था को "केवल्य" कहा है। अव महावीर तीर्थंकर श्री महावीर वने। इन्द्र की आज्ञा से देवों ने समवशरण (उपदेश-सभा) की रचना की। भगवान महावीर का उपदेश होने वाला था किन्तु योग्य गणधर के अभाव में महावीर मौन थे।

'इन्द्रभूति' (गौतम) उस युग का दिग्गज विद्वान था। महावीर की यश गाथा से प्रभावित वना वह उनके विद्वता की परीक्षा को आतुर था। वह अपने ५०० श्रेष्ठ विद्वान शिष्यों के साथ केवली महावीर से शास्त्रार्थ के लिए वहाँ आया। महावीर ने कहा—इन्द्रभूति गौतम. निकट आओ, मैं तुम्हारी सभी शंकायें और उनका समाधान जानता हूं। तुम ध्यानपूर्वक सुनो। इन्द्रभूति विस्मित केवली भगवान की वाणी सुनता रहा। पूर्ण-रूपेण उसका समाधान होता जा रहा था। एकाएक महावीर के चरणों में गिर कर उसने निवेदन किया, प्रभो! वहुत भूला, वहुत भटका। अव हमें शरण लें, हम सव प्रव्रज्या ग्रहण कर मुनि धर्म का पालन करेंगे। इन्द्रभूति और ५०० उसके शिष्यों ने जैन-मुनि व्रत अंगीकार किया। यह विपुलाचल पर्वत पर की घटना थी।

समवशरण सभी प्रकार के प्राणियों से आकीर्ण था। मगध सम्राट श्रेणिक विम्वसार भी मनुष्यों के कक्ष में वैठ कर भगवान की वाणी सुन रहा था। तीर्थंकर की वाणी सूत्र रूप थी। इनभूति आदि ९९ गणधर तीर्थंकर की वाणी का वर्गीकरण करते हुए शिष्यों की स्मृति में स्मरण रखने का आदेश दे चुके थे। केवली भगवान

श्री महावीर का यह क्रम ३० वर्षों तक अर्थात् ४२ से ७२ वर्ष की आज तक चलता रहा। इन्द्रभूति (गौतम) गणधरों के नायक थे।

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी की रात्रि और अमावस्या के प्रभात की मंगल वेला में महावीर ने इस नश्वर शरीर को पावा के उद्यान में सरोवर तट पर त्याग कर मोक्ष पद लिया। सिद्ध भगवान की विभूती से अविभूत हुए भक्तजनों ने स्नेह पूरित दीपकों की दीपमालिका सजोकर तीन महावीर निर्वाणोत्सव मनाया। यही दीप मालिका महोत्सव पर्व के रूप में हम सबको प्राप्त हुआ है। आज यह दीपोत्सव जन-जन के मानस को प्रकाश देकर महावीर की दर्शना की ओर प्रत्येक वर्ष उदबोधित करता आ रहा है। और भविष्य में भी करता रहेगा।

ती० श्री महावीर धर्म के व्याख्याता थे। ती० महावीर से पहले प्रागऐतिहासिक काल से लेकर आज से २७५० वर्षों पूर्व तक में २३ जैन तीर्थंकरों ने इस भारत भूमि को पवित्र किया सभी ने अपनी-अपनी देशना दी, उन देशनाओं को शास्त्रकारों ने 'पूर्व' कहा है। पूर्व-शास्त्र १४ हैं। इनमें ती० श्री महावीर के पूर्व की विचार धाराओं, मत मतान्तरों, ज्ञान-विज्ञानों का संकलन है।

महावीर की वाणी सूत्र रूप थी। उन्हें बारह विभागों में गौतम गणधर ने संकलित कर उनकी व्याख्या की है। १२ भागों में होने से उसे द्वादशांग (बारह अंगों वाला) कहा गया है। समय पा कर सभी शास्त्र नष्ट हो गए। १२ वे अंग दृष्टिवाद के एक अंश के में पूर्वों का समावेश है। दूसरे पूर्व अग्रायणीय के कर्म प्रकृति नाम के अधिकार (महाकम्म-पाहुड) के थोड़े अंश का ज्ञान सौराष्ट्र निवासी आचार्य धरसेन को था।

आचार्य धरसेन महिमा नगरी में हो रहे दक्षिण-पंथीय मुनि सम्मेलन को सन्देशा भेज कर दो मेधावी मुनियों को आमन्त्रित किया। प्रतिफल में आन्ध्र देशवासी आचार्य पुष्पदन्त और भूतवली आचार्य महाराज के पादमूल में आकर उपस्थित हो गए। आचार्य वर ने उन्हें 'महा कमपाहुड' (महा कर्म प्रवृत्ति शास्त्र को पढ़ाया। इसी ग्रन्थ के आधार पर दोनों आचार्यों ने छः खण्डों में 'षद्खण्डागम्' ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ का 'षद् खण्डागम्' नाम यह सूचित करता है कि ग्रन्थ छः खण्डों में विभाजित है। इसे "सत्कर्म प्राभूत, खण्डसिध्दांत अथवा षट खण्ड सिध्दांत" भी कहा जाता है। प्रथम से पांच खण्डों में

६००० श्लोक और अन्तिम खण्ड (छठवें) में ३०,००० तीस हजार श्लोक हैं। दिगम्बर आम्नाय का केवल मात्र यही एक प्राचीन ग्रन्थ धरोहर रूप है। और इसी पर आचार्यों ने नये-नये ग्रन्थों की रचना की है और कर रहे हैं। ग्रन्थ का रचना काल ई० की दूसरी शताब्दी है।

ग्रन्थ की भाषा सामान्यवत् : प्राकृत और विशेषत् जैन शौरसेनी है। यह भाषा कुन्दकुन्दाचार्य जैसी है। ग्रन्थ पद्य-शैली में है। कहीं कहीं गाथा का भी प्रयोग है। ग्रन्थ मि० ज्येष्ठ शुक्ला ५ को पूर्ण हुआ, अतएव उस-दिन महान महोत्सव मनाया गया। इस तिथि को पर्व का रूप दिया गया। था। यह 'श्रुतपंचमी' के नाम से प्रख्यात हुई। आज भी श्रद्धालुजन श्रुतपंचमी को महोत्सव मनाते हैं। षटखण्डागाम् के छः खण्ड इस प्रकार हैं—१- जीवट्ठाण, २- खुद्दावंध, ३- वंधास्वामित्व ४- वेदना. ५- नामकर्मणा और ६ वां वहावंध।

"षटखण्डागम्" ग्रन्थ में सूत्र रूप में जीव द्वारा कर्म-वन्ध और उससे उत्पन्न होने वाले नाना जाति के परिणामों का विस्तार पूर्वक गम्भीरता से वर्णन है। यह विवेचना प्रथम तीन खण्डों में जीवकतृत्त्व के अपेक्षा से है। दूसरा भाग भी तीन खण्डों का है, जिसमें कर्म-प्रकृतियों के स्वरूप की अपेक्षा द्वारा वर्णन है। आचार्य नेमिचन्द्र ने इसी ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप छः खण्डों का ही गोम्मट्सार के नाम से ग्रन्थ लिखा है। प्रथम भाग के तीन खण्डों का नाम "जीवकाण्ड" और दूसरे भाग के तीन खण्डों का नाम "कर्मकाण्ड" है।

उपरोक्त ग्रन्थ पर अनेक टीकायें हुई हैं। श्रुतावतार-कथानुसार १- आचार्य कुन्दकुन्द की "परिकर्म" २- शामकुण्ड कृत"पद्धति",३-तुम्वलराचार्य कृत "चूड़ामणि", समन्तभद्रकृत तथा व्याख्यानमाला प्रज्ञप्ति आदि टीकायें प्रमुख है। टीकाओं का रचना काल भी दूसरी से छठवीं शताब्दी तक का है। दुर्भाग्यवश कोई भी टीका उपलब्ध नहीं है।

प्रमुख टीका ग्रन्थ आचार्य वीरसेन का 'धवला' ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि "धवल-सिद्धान्त" के नाम से है। इसका रचनाकाल शकसंवत ७२८ ई० सन् ८१६) है। यह ७२००० श्लोकों का प्राकृत-संस्कृत मिश्र भाषा का ग्रन्थ है। किन्तु भाषा की दुरुहता के कारण इस ग्रन्थों का प्रसार न हो सका। टीका ग्रन्थों से सव से अधिक प्रसार आन्नेमिचपरन्द्र रचित गोम्मट्र-सार ग्रन्थ काही हुआ, गोम्मट्सार पर भी संस्कृत भाषा की दो विशाल टीकायें हैं उपरोक्त टीका ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी भाषा में श्री टोटरमलीज

ने वि० स० १८८१ में "सम्यकज्ञान चन्द्रिमाँ" ग्रन्थ रचा है। एक कृति लब्धि सार भी प्राप्त है। इसमें आत्मा-शुद्धि रूप में लब्धियों के प्राप्त करने की विधि बतलाया गया है। यह ग्रन्थ शक संवत ११२५ (ई० सन्० १२०३) की रचना है।

"षटखण्डागम् "ग्रन्थ की दो पूर्ण और एक भुखि तीनताड़पत्रिय प्रतियाँ कन्नड़ भाषा की मैसूरराज्य के मूड़बद्री गाँव में सिद्धान्त-वस्ति (मन्दिर) में सुरक्षित विद्यमान थीं। वहाँ श्रध्दालु जन जाकर केवल मात्र दर्शन कर आता था। मूड़ वद्री गाँव की गणना इस ग्रन्थ के कारण तीर्थ क्षेत्रों में होने लगी थी।

ग्रन्थों की जीर्णता से जन-मानस चिन्तित हो उठा। १८९५ ई० में उसकी प्रतिलिपि कराने का निर्णय हुआ। प्रतियों का लेखक कार्य अति-मन्द गति से होता हुआ २७ वर्षों पूर्ण हुआ। विचित्रता यह रही कि एक प्रतिलिपि गुप्त रूप से संरक्षकों की दृष्टि से ओझल होकर सहारन-पुर नगर में प्रगट हुई। यह प्रति भी कन्नड-भाषा में ही थी। इसका यहाँ नागरी लिपि में रूपान्तर कराया गया। यह कार्य दो वर्षों में पूर्ण हुआ।

नागरीभाषा लिपि की भी एक प्रति प्रच्छन्न रूप से प्रवासित हो गयी। वह अमरावती, कारंजा, सागर आदि नगरों का परिभ्रमण करती हुई "आरा" पहुँची और स्पष्ट रूप में वहाँ प्रगट हो गयी। इस नागरी लिपि के प्रति इस महान ग्रन्थराज के सम्पादन का कार्य डा० हीरालाल जी जैनएम०ए०, डी० लिट्, एल० एल० बी० को १९३८ में सौंपा गया। जिसे २० वर्षों में अर्थात् १९५८ ई० में आपने सम्पूर्ण कर दिया।

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का मूल सिध्दान्त ग्रन्थ "षटखण्डागम्" ही श्री महावीर के वाणी के रूप में केवल मात्र उपलब्ध है। किन्तु श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की मान्यता भिन्न है। उनके यहाँ ४५ ग्रन्थों की उपलब्धि मानी जाती है। ११ अंग. १२ उपांग, ६ छदेसूत्र, ४ मूलसूत्र, १० प्रकीर्णक, २ चूलिका। (११+६+४+१०+२=४५)।

श्वेताम्वर सम्प्रदाय में महावीर वाणी के उपलब्धि कथा इस प्रकार से है। ती० श्री महावीर के निर्वाण के १६० वर्षो पश्चात् पाटलिपुत्र (पटना) नगर में आचार्य स्थूलिभद्र ने एक जैन मुनिराजों का वृहद सम्मेलन बुला कर आगम ग्रन्थों का संकलन किया। ११ अंग संकलित हो गए। वारहवें अंग दृष्टिवाद का उपस्थित मुनियों को स्मरण न होने से वह संकलित न हो सका।

पश्चात् शताब्दियों में उपरोक्त उपलब्ध ग्रन्थ पुनः लुप्त हो गये। अब महावीर निर्वाण के ८४० वर्षों पश्चात् दूसरा मुनि सम्मेलन आ०स्फन्दिल ने मथुरा में आमन्त्रित कर आगम ग्रन्थों को संकलित किया। इसी समय वल्लभि में 'नागार्जुन' ने भी एक सम्मेलन बुला आगम-साहित्य को एकत्रित किया। परन्तु काल की कराल दाढ़ें सभी संकल्पों को चबा गई। अन्तिम संकलन महावीर निर्वाण के ९८० वर्षो पश्चात् पुनः वलभि में देवर्द्धि गणि 'क्षमा श्रमण" द्वारा प्रयास कर संकलित किया गया। इसी में उपरोक्त ४५ ग्रन्थ संकलित हो पाये हैं।

किन्तु श्वेताम्बर अम्नाय की 'स्थानकवासी' शाखा कुल ३२ ग्रन्थों की ही उपलब्धि मानती है— (११+अंग+१२ उपांग+४ छंदसूत्र +४ मूल सूत्र+१ आवश्यक।) तीर्थोद्रिगारिक प्रकीर्ण में आगम ग्रन्थों के लुप्त होने की तालिका निम्नलिखित हैं: जो इस प्रकार है।

वीर निर्वाण संवत १७० के मध्यम में ४ अन्तिम पूर्वोका विच्छेद माना गया है।

,,	,,	,,	१०००	तक में पूर्ण ज्ञान का सर्वथा	,,	,,	,,		
,,	,,	,,	१२५०	,, भगवती सूत्र का ह्रास माना जाता है।					
,,	,,	,,	१३००	,, समवाय योग का	,,	,,	,,	।	अन्य
,,	,,	,,	१३५०	,, स्थानांग	,,	,,	,,	।	आगम
,,	,,	,,	१४००	,, वृहत्कल्प	,,	,,	,,	।	ग्रन्थों का
,,	,,	,,	१५००	,, व्यवहार	,,	,,	,,	।	भी क्रमशः
,,	,,	,,	१५००	,, हसकल्प सूत्र	,,	,,	,,	।	ह्रासहोता
,,	,,	,,	१९००	,, सूत्रकृतांग	,,	,,	,,	।	गया।

◆ भीतर और बाहर की सम्पूर्ण साथियों के उन्मोचन का नाम अपरिग्रह है।

◆ परिग्रह से रहित व्यक्ति स्वाधीन और निर्भयी रहता है।

उत्थान और पतन का रहस्य

भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में विराजमान थे। गणधर गौतम भगवान के पास आए, विनयपूर्वक बद्धाञ्जलि होकर पूछा कि "भन्ते। यह आत्मा कभी गुरुत्व (भारीपन) और कभी लघुत्व (हल्कापन) प्राप्त करता है, इसका मर्म क्या है ?"

भगवान ने इस गुरु गम्भीर प्रश्न को एक रूपक देकर समझाया—"गौतम ! कोई मनुष्य एक सूखे हुये निश्छिद्र तुम्बे को दर्भ (डाभ) आदि से वेष्टित कर उस पर मिट्टी का एक लेप करता है और उसे धूप में सुखा देता है। जब वह पहला लेप सूख जाता है, तो पुनः उसी प्रकार तुम्बे पर दूसरा लेप करता है और उसे भी सुखा लेता है। इस क्रम से वह आठ लेप उस तुम्बे पर करता है और सुखा लेता है। इसके पश्चात् वह पुरुष उस तुम्बे को किसी गहरे पानी की सतह पर छोड़ देता है तो क्या वह तैरेगा या डूब जायेगा ?

'भन्ते ! वह तो इस प्रकार डूब ही जाएगा।'

'गौतम ! उसी प्रकार यह आत्मा जब हिंसा, असत्य, चौर्य आदि असत् प्रवृत्ति रूप कर्म करता है, तो ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप पुद्गल का लेप अपने ऊपर लगा लेता है, और उसी कर्म रूपी लेप के कारण वह गुरुत्व (भारीपन) प्राप्त करके नरक आदि रूप संसार समुद्र में डूब जाता है।

और जब उस तुम्बे पर से दर्भ आदि के बन्धन सड़ गल कर टूटने लगते हैं, मिट्टी के लेप साफ होते जाते हैं, तो वह तुम्बा जलाशय की जमीन की सतह से कुछ-कुछ ऊपर उठने लगता है। धीरे-धीरे सब समस्त लेप उतर जाते हैं तो तुम्बा अपने मूल रूप में आ जाता है और पानी की ठीक ऊपर की सतह पर स्वतः ही तैरने लग जाता है।

इसी प्रकार आत्मा के कर्म जब कुछ क्षीण होते हैं तो वह ऊपर उठने लगता है। जब समस्त कर्म मल क्षीण हो जाते हैं, तो आत्मा संसार से सर्वतोभावेन ऊपर उठ आता है लोकाग्र में स्थित होकर सिद्ध, बुद्ध, निरंजन, निर्विकार परमात्मा हो जाता है। यही आत्मा का लघुत्व है।'

गौतम की जिज्ञासा शान्त हुई। ये श्रद्धानवत हो गये।

—उपाध्याय कवि अमर मुनि

तीर्थंकर महावीर

की

निर्वाण रजत-शती की सफलता की
मंगल कामनाओं सहित

(विनोद व विमल मिल्स)

आगरा रोड

उज्जैन (म० प्र०)

महावीर के सन्देश

□ श्री प्रसन्न कुमार बाकलीवाला

अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकांतवाद, यह अकारमय विश्व शांति के लिए उपयोगी होने के कारण भगवान महावीर ने इस पर अधिक जोर दिया, यही संसार में चिर शान्ति प्रदान करने वाले हैं।

अहिंसा

अपने व्यवहार से दूसरे किसी भी जीव को वेदना न हो, इस विवेक से जीवन व्यवहार करना यह सबसे बड़ी अहिंसा है, यही व्रत है, यही संयम है, चरित्र है, शील है, महावीर की अहिंसा में जीयों और जीने दो का महान तत्व सम्मिलित है, समस्त चराचर जीवों के प्रति एक मात्र अनुकम्पा को व्यक्त कराने वाला एक मात्र धर्म महावीर धर्म । प्राणियों के हनन में तो हिंसा है ही, साथ ही हनन करने का इरादा (Intention) करना यह भी हिंसा है। वह पहिले होती है बाद में हिंसा होती है, जीव के मन में विकार उत्पन्न होना ही हिंसा का कारण है।

अपरिग्रह

आज समाजवाद का बोलबाला है परन्तु भगवान महावीर ने आदिकाल से ही समाजवाद की ओर जाने की प्रेरणा दी है। वही अपरिग्रह वाद है, अपने लिये जरूरत हो इतना ही रखना, उससे अधिक का त्याग करना यह अपरिग्रह वाद का आदर्श है, यदि इस तत्व को अपनाया जाय तो लोक में अशान्ति, सक्लेश व संघर्ष क्यों कर होगा? विचार करें, आज नाना प्रकार के संघर्ष केवल इस अपरिग्रह तत्व को न अपनाने के कारण से है। गृहस्थ जीवन में परिग्रह को आवश्यकता के अनुसार परिमित करो, सन्यास जीवन में सर्वथा परिग्रहों का त्याग करो, इससे बड़ा समाधान किसमें प्राप्त हो सकता है। यही आत्म शान्ति का सर्व श्रेष्ठ मार्ग है, समाजवाद का सरल स्रोत है। वास्तव में हम धर्म और संस्कृति को भूल गये।

अनेकाँतवाद

में अनेक धर्म है, परस्पर विरुद्ध धर्म भी है, इसलिये वस्तु स्वभाव का

विचार करने पर आपने जिस धर्म का कथन किया है वही सत्य है, अन्य धर्म का कथन असत्य है यह कहने का आपको क्या अधिकार है ? आपका कथन जैसा सत्य है अन्य कथन भी सत्य किसी अपेक्षा से हो सकता है अगर जीवन की यह दृष्टि रखी जाय तो जगत में संघर्ष और कलह क्यों कर हो सकता है. दुनियाँ में अपना ही कहना, मानना सर्व तरह से सत्य मानते हैं, उस हठ से ही अनेक युद्ध कलह होते हैं, परन्तु तत्व स्वरूप जिस प्रकार मौजूद है उस प्रकार मान लेने पर विवाद क्यों कर होगा, आग्रह वृत्ति से ही विवाद उत्पन्न होता है। यदि महावीर के द्वारा समर्पित अन्य तीर्थंकरों के द्वारा प्रतिपादित वस्तु स्वरूप को स्वीकार कर लिया जाये तो इस विश्व में चिरशान्ति आ सकती हैं, उस समाधान का ही नाम समाजवाद है ?

भगवान महावीर के मुख्य उपदेश

(१) मन, वचन व काय से किसी भी प्राणी को पीड़ा न होने दो, क्यों कि प्राण सभी को प्यारे है चाहे छोटा जन्तु हो चाहे बड़ा प्राणी हो जीने का अधिकार सभी को है अतः "स्वयं जीयो और दूसरों को जीने दो।"

(२) हित, मित और प्रिय वचन बोलो। कड़वा बोल सभी को बुरा लगता है। दूसरों को दुःख देने वाला वचन कभी न बोलो।

(३) बिना दिया हुआ दूसरों का द्रव्य न लो। किसी प्रकार भी दूसरों का शोषण न करो।

(४) सादा जीवन हो और सादा वेष। मन और इन्द्रियों के विषय भोगों पर काबू पाकर ब्रह्मचर्य का पालन करो। सदा विचारों को पवित्र रखो।

(५) अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करो। वास्तव में संतोष ही धन है ?

(६) भोजन शुद्ध, सादा, मर्यादित और सात्विक शाकाहार का ही सेवन करो। अन्न, फल, शाक, सब्जी, मेवा, दूध, घी, ही मनुष्य के खाने योग्य सात्विक पदार्थ हैं। माँस, अण्डा व शराब आदि तामसिक पदार्थ हैं। ये हिंसा की उपज हैं, इनका सेवन प्रकृति, धर्म व ईश्वर आज्ञा के विरुद्ध है ये इन्द्रियों में विकार पदा करते हैं, शरीर को रोगी और आलसी बनाते हैं। इसलिए इनका कदापि सेवन न करो।

(७) अपने दोषों व त्रुटियों का निरीक्षण करो तथा उन्हें दूर करने का प्रयत्न करो

(८) अपनी प्रशंसा कदापि न करो। दूसरों द्वारा अपनी प्रशंसा या निन्दा किये जाने पर हर्ष या विषाद मत करो।

(९) कदाचित कभी दूसरों का दोष दिखाई दे जाये तो उनकी निन्दा कभी न करो, यदि कर सको तो उनका सुधार करो।

(१०) शान्त और सन्तुष्ट होने के लिए मानसिक क्लेशों से बचो।

(११) क्रोध, मान, माया, लोभ, मत्सर आदि वैभाविक दुखदायी भावों से बचो तथा क्षमा मार्दव (विरभिमान), आर्जव, (निष्कपटता), शौच (विर्लोभता), समता, निर्भयता आदि स्वाभाविक सुखदायी भावों को ग्रहण करो।

(१२) दूसरों के साथ सदा प्रेम और मैत्री का व्यवहार करो।

(१३) सभी पदार्थ अनेक स्वभाव वाले हैं। इनकी जानकारी व व्यवहार विभिन्न अपेक्षा व दृष्टि से होता है। अतः वस्तु स्वरूप को समझने व व्यवहार में लाने के लिए अपेक्षावाद, अनेकान्तवाद और स्याद्वाद को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि किसी भी विषय में मत विभिन्नता होने पर उसके लिए य झगड़ा निपटाऊ सिद्धान्त हैं।

(१४) जग में विभिन्न आचार विचारों के लोग रहते हैं, वे सभी सत्य प्राप्ति व लोक शान्ति के लिए उद्यमी हैं, इसलिए सहन शीलता से सभी विचारों व सच्चाइयों को समझने की कोशिश करनी चाहिए।

(१५) धर्म वास्तव में सभी लौकिक झंझटों से अलग होकर अपनी शुद्ध आत्मा के अन्दर रमण करने से हैं। यह लोक व्यवहार में दान, दया व इच्छाओं के दमन में है।

आकृति से हर आदम इन्सान नहीं होता
पूजा का हर पत्थर, भगवान नहीं होता
सर्वस्व लुटा दो जीवन भर का भी तुम
अपनों पर कोई अहसान नहीं होता।

—चन्दन मल 'चांद'

वीर पुत्रों जागो

जैन जवानों जागो !

—ब्र हरिलाल जैन, सम्पादक आत्मधर्म, सोनगढ़

जागो ! बहादुर जैन जवानों जागो। प्यारे वीर पुत्रों जागो।

तुम्हारी आत्मा को पहचानकर वीर के मार्ग में प्रवेश करो•••

वीर मार्ग का दरवाजा खोल डालो•••और प्रभु के मार्ग में कदम बढ़ाओ।

अहा, अपने महावीर के मोक्ष के २५०० वें वर्ष का एक महान उत्सव हम उद्यापन कर रहे हैं। ऐसा सुन्दर जैन धर्म और ऐसे आनन्द का अवसर— उसमें यदि तुम्हारे जैसे शूरवीर जवान ऐसा कहेंगे कि 'हमें आत्मा नहीं देखनी,—अरे तो फिर जगत में आत्मा को पहचानेगा कौन ? ऐ जवाँ मर्द जवानों ! ऐ बहादुर वीराँगनाओं ! जगत में अजोड़, ऐसा वीर मार्ग को पाकर तुम्हें ही आत्मा को पहचानना है, और आत्मा को भव दुख से छुड़ाना है। ऐ वीर के सुपुत्रों इस निर्वाण महोत्सव में वीतराग भगवान की श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए दृढ़ निश्चय करना, कि हे वीर नाथ आराध्य देव, हम आपकी संतान अशक्त और कमजोर नहीं है हम तो वीर संतान हैं। वीरतापूर्वक हम भी आत्मा को पहचानकर आपके मार्ग में आ रहे हैं, और समस्त जैन जवान इस ही मार्ग में आयेंगे, प्रवेश करेंगे। हमारे लिए आपके मार्ग के सिवाय दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं। प्रभो ! हमारे जैसे वीर युवक ही आत्म साधना द्वारा आपके मार्ग को भरत क्षेत्र में अभी अठारह हजार पांच सौ वर्ष तक अखंड धारा में टिकायेंगे। आपके मोक्ष पधारे पीछे आज अढ़ाई हजार वर्ष पीछे भी आपका शासन जीवित है—तो हमारे जैसे जैन युवकों के अतिरिक्त दूसरा कौन हैं जो इस मार्ग में प्रमाण करेगा। प्रभो हम ही आपके वारिस हैं, और हम आपके मार्ग में आत्म साधना करेंगे, करेंगे, करेंगे। ये हमारी प्रतिज्ञा है।

हम तो जिनवर की सन्तान हैं, जिनवर पंथ में विचरण करेंगे।

वाह ! बहादुर युवक बन्धुओं-बहनों, धन्य है तुम्हारी वीरता को। तुम्हारी प्रतिज्ञा शीघ्र पूरी करो और वीर शासन की जगत में शोभा बढ़ाओं।

जो मानो उसका धर्म

वैशाख शुक्ला दशमी की रात्रि है। सर्वज्ञ भगवान महावीर का प्रथम उपदेश देवसभा में हुआ। पर इससे क्या? उनका ज्ञान तो दुनियाँ के अन्धकार को नाश करने के लिए है। दूसरे दिन प्रातः ही विहार करके भगवान अपापा नगरी में पधारे तथा शहर के बाहर उद्यान में ठहर गए। शहर में एक महायज्ञ हो रहा है और यज्ञ-सभा में भारत के विख्यात वेदपाठी ब्राह्मण आए हुए हैं।

अपापा के आचार्य सोमिल ब्राह्मण ने महायज्ञ शुरू कर रखा है। उसमें भाग लेने के लिए भारत के माने हुए ग्यारह विद्वानों को उन्होंने आमन्त्रित किया है। वे बुद्धि में बृहस्पति हैं और वाद-विवाद में वाचस्पति हैं। सबके साथ सैकड़ों शिष्यों का समुदाय है। सब विद्या-बुद्धि में एक से एक बढ़कर हैं।

उसी शहर के बाहर भगवान का समवरण लगा हुआ है। भगवान धर्म-देशना दे रहे हैं। वे लोगों की भाषा में ही प्रवचन करते हैं। पंडित लोग संस्कृत भाषा में उपदेश दे रहे थे और वह जन-साधारण की समझ से परे था। भगवान महावीर ने उपदेश की भाषा बदल दी। वस्तुतः ज्ञान ज्ञानी के लिए नहीं; अपितु साधारण लोगों के लिए होता है। और साधारण लोग उसे तभी पा सकते हैं, जब कि वह उनकी भाषा में दिया जाए। इसी लिए भगवान अर्धमागधी भाषा में धर्म के गूढ़ रहस्य एवं तत्त्व प्रकट कर रहे हैं।

वे लोगों को बताते हैं—

"जीव क्या है? अजीव क्या है?
लोक क्या है? अलोक क्या है?
पुण्य-पाप क्या है? आश्रव-संवर क्या है।
बन्ध-मोक्ष क्या है? नरक क्या है?
नरक के दुख कैसे कैसे हैं? सुख कैसे होते हैं?
देवलोक में कैसे जा सकते हैं?
तिर्यञ्च गति क्या है? मनुष्य भव क्या है?" इत्यादि

सबने ध्यानपूर्वक भगवान का प्रवचन सुना। सब परस्पर कहने लगे, "अरे! यह धर्मबोध तो बहुत सुन्दर है। यह तो हमें अपनी ही भाषा में जीवन का रहस्य समझा रहे हैं।" भगवान महावीर के शब्द उनके कर्ण-कुहरों में गूंजने लगे।

"देव चाहे वैभव में कितना ही बड़ा क्यों न हो और भले उसका स्वर्ग कितना ही सुन्दर, सुहावना एवं रम्य क्यों न हो, फिर भी वह मानव से महान् नहीं हो सकता। मानव की मानवता के सामने देव भी नतमस्तक हो जाता है। अतः व्यक्ति को सदा-सर्वदा सत्य-अहिंसा आदि मानवीय एवं आत्मगुणों का साक्षात्कार करना चाहिए। मानवता के नाते सभी मानव समान हैं। जन्म से कोई भी व्यक्ति न बड़ा है और न छोटा। प्रत्येक व्यक्ति काम से, गुणों से और अपने श्रम से महान् बनने के लिए उच्चजाति, उच्चकुल अथवा उच्चघर में जन्म लेना ही पर्याप्त नहीं है; उसके लिए तो उच्च जीवन एवं श्रेष्ठ कार्य होने चाहिएं।

धर्म साधु के लिए है और भोग-विलास गृहस्थों के लिए है; यह मान्यता बिल्कुल भ्रमपूर्ण है। साधु और गृहस्थ दोनों का जीवन धर्म एवं त्याग से संयुक्त है। साधु पाँच महाव्रत स्वीकार करता है तो गृहस्थ पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत स्वीकार करता है।

दुनिया के सभी प्राणी जीना चाहते हैं। मृत्यु सबको दुःख प्रतीत होती है। अतः किसी भी प्राणी को नहीं मारना चाहिए। धर्म के नाम पर हिंसा करना, यज्ञ में पशुबलि चढ़ाना महापाप है। अतः किसी भी प्राणी को कष्ट मत दो। किसी का तिरस्कार मत करो। पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। सबके साथ स्नेह-भाव रखो। आत्मा से परमात्मा बनने के लिए—पूर्णता को पाने के लिए पाँच महाव्रतों का पालन आवश्यक है।

१ अहिंसा—किसी जीव को सताओ नहीं, मारो नहीं, सबके साथ मैत्री भाव रखो।

२ सत्य—झूठ न बोलो, कटु वचन न बोलो। किसी का मर्म मत खोलो सदा मधुर सत्य बोलो। सबके जीवन में प्रेम-रस घोलो।

३ अचौर्य—सूक्ष्म या स्थूल किसी भी पर पदार्थ को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण न करो।

४ ब्रह्मचर्य—शीलवान् बनो। नारी को केवल भोग-विलास का साधन मात्र न समझो। उसका सम्मान करना सीखो, वासना से ऊपर उठो।

५ अपरिग्रह—भोगोपभोग के साधनों का संग्रह न करो। उन पर ममत्व भाव एवं आसक्ति मत रखो।

आपने जो देखा है, वह सत्य हो सकता है। सत्य सापेक्ष है। अतः अपने ही दृष्टिकोण को एकान्त रूप से पकड़ कर मत रखो। दूसरे के दृष्टिबिन्दु को समझने का प्रयत्न करो। अनेकान्त के उज्ज्वल आलोक में सत्य को देखो-परखो।"

वाह, वाह ! क्या उपदेश है ? सारे शहर में भगवान के ज्ञानामृतपूर्ण सरल गहन उपदेश की चर्चा हो रही है

हमारा कर्त्तव्य

—श्री भगतराम जैन

अभी हमने तीर्थंकर महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव कार्यक्रमों में भाग लिया। जैन समाज के चारों सम्प्रदायों व इतर समाजों ने भी अपना उत्साह प्रकट किया। इससे हमें खुशी होती है और गर्व होता है कि इस निर्वाण महोत्सव के अवसर पर चारों सम्प्रदाय एक मंच पर इकट्ठे हुये हैं। यह एक बड़ी ही महत्वपूर्ण बात हुई है और इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है जैन समाज का अखिल भारतीय स्तर पर एक विशाल संगठन का बनाना। इस अवसर पर हम सारे देश में एक संगठनात्मक संघ बनाने में सफल हो सके इसके लिये समस्त जैन समाज बधाई की पात्र है। क्योंकि समाज के सहयोग से ही यह विशाल कार्य कार्य रूप परिणित हुआ।

इतनी उपलब्धि करने के बाद भी हम एक मुद्दा भूल जाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि अभी तक वीर के मार्ग को भूले हुये हैं। जिस वीर के मार्ग को लोगों को बताने के लिये हमने करोड़ों रुपये खर्च किये हैं जिससे प्राप्ति की कोई आशा नहीं; मात्र थोड़ा स्वाध्याय करके हम अपने जीवन की काया पलट सकते हैं।

हमारे आचार्यों, मुनियों आदि ने वीर के उद्दिष्ट मार्ग का स्वरूप बताया है। हमें चाहिये कि अपने आत्म-कल्याण के लिये भी थोड़ा प्रयास करें। मात्र जलसे, जलूस, नाटक आदि करने से आत्मा का कल्याण सम्भव नहीं है। ये तो लोक व्यवहार के कारण हैं और मात्र प्रचार साधन है। वास्तविक सुख तो वीर धर्म के पालन करने में है जो बिना अर्थ खर्च किये भी प्राप्त हो सकता है।

अभी तक हम फिजूल के कार्यों में उलझे हुये हैं। वास्तव में य सब उत्सव बेकार ही होते हैं जब तक महापुरुषों की शिक्षाओं को अमल में ही न लाया जाये। जब हम वीर के उपदेशों पर थोड़ा-सा भी चलने लगते हैं तो स्वतः ही कुछ ऐसा आभास मन में होता है कि ये सब शो के कार्य है और इनसे कोई मतलब हल होने वाला नहीं है। जितना हम इन कार्यों में उलझते हैं उतना ही वीतरागता से दूर होते जाते हैं।

अतः आज आवश्यकता है अपने अन्तर्मन में वीतराग भगवान की वाणी को उतारने की। उस पर अपने पग बढ़ाने की।

आगम-पथ :

आपकी दृष्टि में

(इस स्तम्भ में प्रत्येक अंक के लिये आपके विचार सादर आमंत्रित हैं।)

आगमपथ मिला। सितम्बर व अक्तूबर के अंक बहुत पसन्द आये। पत्रिका दिनों दिन उन्नति कर रही है।

—राकेश जैन, दिल्ली

आगमपथ जैसी सुन्दर पत्रिका के लिये हमारा सम्पूर्ण परिवार आपका कृतज्ञ है। आप हमें पिछले सभी अंक भेज दें जिससे हमारे पास एक फाईल तैयार हो सके।

—विनय कुमार पंचोलिया
सनावद (म० प्र०)

आगमपथ मुझे अच्छा लगता है वस्तुतः मैं उसका इन्तजार करता हूँ। आन्तरिक हृदय से मैं इसकी चहुंमुखी प्रगति देखना चाहता हूँ।

—दिनेश उपाध्याय, भोपाल

आगम पथ की सरलता व आडम्बरहीनता ने मुझे आकर्षित किया है। यही सरलता उद्देश्यपूर्ति में सहायक होगी। बधाई !

—चेतन प्रकाश पाटनी, जोधपुर

आगमपथ को अक्टूबर अंक काफी अच्छा लगा। नलिनी अग्रवाल, श्री प्रकाशवीर शास्त्री व श्री टी. एन. सिंह जी के लेख बहुत सुन्दर हैं।

—राकेश जैन, अलीगढ़

आगम-पथ का शास्त्री अंक गागर में सागर है। जो कार्य भारत सरकार भूल चुकी है उसे आप जैसे युवक कर रहे हैं यह देखकर हर्ष एवं संतोष हुआ।

—जय भगवान गुप्त, फरीदाबाद

शास्त्री स्मृति अंक रुचिकर व पठनीय है, जो बात मेरे मन में खटकती थी वह 'डायरी का एक पन्ना' शीर्षक में नलिनी जी ने लिख दी है, प्रसन्नता हुई।

—रामकुमार श्री वास्तव, ग्वालियर

भाटगिरी के इस युग में बड़े-बड़े अखबार सत्ताहीन और सम्पन्नों के गुणगान में रत हैं, तब आपने बगैर कोई परवाह किये 'शास्त्री जी' का मसला आगमपथ में देकर तथाकथित बड़ों के मुख पर पाद-प्रहार ही किया है। आपकी निस्वार्थ भावना एवं साहसी प्रवृति अभिनंदनीय है।

—सुरेश 'सरल', जबलपुर

समाचार संकलन

- स्वामी विद्यानन्दि रचित महान ग्रन्थ राज अष्ट सहस्त्री का हिन्दी अनुवाद आर्थिका विदुषी रत्न ज्ञानमती माता जी ने किया है। यह ग्रन्थ लगभग १२०० वर्ष पूर्व 'स्वामी समन्त भद्र कृत देवागम स्त्रोत व भट्टाकलंक देव के अष्टशती ग्रन्थ का सम्मिश्रण है। इस ग्रन्थ का भाषान्तर २००० से भी अधिक पृष्ठों का है जिसको ४ खण्डों में विभाजित किया जा रहा है। २५० पृष्ठ के प्रथम खण्ड का मूल्य मात्र ५१ रु० है। इसका प्रकाशन दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान ४६१० पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६ ने किया है।

- दिल्ली की उपनगरी लक्ष्मीनगर—शकरपुर में भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में बनी समिति द्वारा एक क्षम-वणी पर्व पर क्षमायाचना समारोह आयोजित किया गया जिसकी अध्यक्षता सुप्रसिद्द समाजसेवी श्री भगत राम जैन ने की। समारोह में मुनि श्री राकेश कुमार जी, पं० परमानन्द जी शास्त्री आगमपथ के सम्पादक श्री विनोद कुमार जैन आदि ने अपने विचार रखे। श्री महेन्द्र कुमार जैन मन्त्री निर्वाण महोत्सव सम्बन्धी गतिविधियों पर प्रभाव डाला।

- मित्र मिलन सभा के तत्वावधान में संचलित मित्र मिलन पुस्तकालय के नये भवन में स्थानावतरित होने पर सुप्रसिद्द सामाजिक कार्यकर्ता व शिवाजी महाविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष श्री गोरी नन्दन जी सिंहल ने नये भवन का उद्घाटन किया। आगमपथ के सम्पादक श्री विनोद जैन ने श्री सिंहल का परिचय दिया व सभा के कार्यक्रमों का विस्तृत ब्यौरा पेश किया। कार्यक्रम अत्यन्त सफल व सराहनीय रहा।

- अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के सानिध्य में दिल्ली में जैन विश्व भारती ने अपना अंचल खोल दिया है। इसके द्वारा जैन एवं प्राच्य ग्रन्थों का अध्ययन, अनुसंधान, शोध आदि कार्यों को प्रोत्साहन व मदद की जाएगी। समय-समय पर संगोष्ठियों आदि का भी आयोजन किया जाएगा। निर्वाण शताब्दी के शुभ अवसर पर विश्व भारती द्वारा अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया गया है।

* अनन्त चौदस के दिन युवा सामाजिक कार्यकर्त्ता श्री प्रवीण जैन ने एक दिन का मौन व्रत धारण किया। ऐसे उत्तम कार्य पर आपको बधाई।

* पश्चिमी नीमाड़ की जिला स्तरीय भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव समिति के सदस्य श्री सुमनाकर जी ने अपने कुछ सुझाव प्रस्तुत किए हैं। जिनमें मेरी भावना का प्रचार, गोष्ठियां व महावीर के सिद्धांतों पर सरल भाषा में प्रवचन विशेषांकों, व स्मारिकाओं के प्रकाशन प्रमुख है।

* ६ अक्टूबर को भारत जैन महामण्डल की दिल्ली शाखा की ओर से अणुव्रत भवन में आचार्य श्री तुलसी जी के सानिध्य में विश्व मैत्री दिवस का विशाल आयाजन हुआ। कार्यक्रम का उद्घाटन रेलवे मन्त्री श्री ललित नारायण मिश्र ने किया। इस अवसर पर आचार्यों, साधुओं व विद्वानों ने अपने विचार रखे। श्री भगतराम जैन मंत्री ने आये हुए अतिथियों का स्वागत किया।

* सुप्रसिद्द कथा लेखक श्री मोतीलाल सुराणा की ६१ कहानियों का संग्रह 'बोध कथा कौमुदी' का विमोचन सुप्रसिद्द उद्योगपति सेठ लालचंद हीराचन्द जी बम्बई ने १३ अक्टूबर को इन्दौर में किया। यह पुस्तक जवरचन्द फूलचन्द ग्रन्थ माला का १६ वाँ पुष्प है।

* श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की शीतकालीन सन् १९७५ की परीक्षा हेतु प्रवेश फार्म भरने की अन्तिम तिथि ३० नवम्बर कर दी गयी है। विलम्ब शुल्क सहित फार्म १० दिसम्बर तक स्वीकार्य हैं।

* रविवार १० नवम्बर को लक्ष्मीनगर, शक्करपुर में क्षेत्रीय दिगम्बर निर्वाण समिति की ओर से विशाल समारोह व पुरस्कार वितरण हुआ। कार्यक्रम को दिल्ली के उपराज्यपाल श्री कृष्णचन्द्र, मूर्धन्य पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन, श्री भगतराम जैन ने सम्बोधित किया। श्री महेन्द्र कुमार जैन एवं श्री नरेन्द्र कुमार जैन द्वारा प्रदत्त राशि से महानगर पार्षद श्री मेहताब चन्द जैन ने निबन्ध प्रतियोगिता में विजयी छात्रों को पुरस्कार वितरित किये।

* जैन जगत मासिक के प्रबन्ध सम्पादक श्रीचन्दन मल 'चाँद' के पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया। आगमपथ परिवार उन केस्वर्गवास पर हार्दिक सम्वेदना प्रगट करता है।

इस अंक के लेखक

- नलिनी अग्रवाल : प्रबन्ध सम्पादक—आगमपथ व स्थायी स्तम्भ 'डायरी का एक पन्ना' की नियमित लेखिका, पता—द्वारा आगमपथ, २०२३, बहादुर गढ़ रोड, दिल्ली-६
- श्री अगरचन्द नाहटा :—सुप्रसिद्ध लेखक, प्राचीन साहित्य-गवेषक; नाहरों की गवाड़, विकानेर (राज०)
- श्री कल्याण कुमार 'शशि' :—आशुकवि एवं प्रसिध्द वैद्य : अनेकों पुरुस्कारों से सम्मानित अनेकों शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्धित; जैन फार्मेसी रामपुर—२४४९० (उ० प्र०)
- डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री—अप्रभंश व जैन सिद्धांत के विद्वान लेखक सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, नीमच, (म० प्र०)
- श्री ऋषभदास राँका—अतुलनीय व्यक्तित्व के धनी, भारत जैन महा-मण्डल के प्रधान मन्त्री व जैन जगत मासिक के सम्पादक, अनेकों पुस्तकों का प्रकाशन, १५-ए हार्निमन सर्कल, फोर्ट वम्बई-१
- चेतन प्रकाश पाटनी—प्राध्यापक, लेखक, ६७६, सरदारपुरा जोधपुर (राज०)
- कुमारी सुधा जैन एम० ए० बी० एड० : लेखिका, यत्र-तत्र पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित, ठठेरी बाजार, वाराणसी (उ० प्र०)
- डा० इन्द्र चन्द्र शास्त्री—सुप्रसिध्द लेखक एवं विचारक, १० ए।१७ शक्ति नगर दिल्ली-७
- श्री मोतीलाल सुराणा—सुप्रसिद्द बोध कथा व वधु कथा लेखक, ८।५ महेश नगर इन्दौर (म० प्र०)
- सुरेश 'सरल'—उदयीमान कवि व साहित्यकार ; अनेकों रचनायें प्रकाशित; समाजसेवी व साहित्यिक संस्थाओं से सम्वधित; सरल कुटी, गढ़ा फाटक, जवलपुर (म. प्र.)
- आनन्द विल्थरे : कवि; बालाघाट-१२
- अशोक कुमार जैन—क्रांतिकारी विचारधारा के युवक; रुड़की विश्व-विद्यालय में शोधार्थी; नवीन पत्रिका 'दिशा-बोध' के सम्पादक; एफ-५, जवाहर भवन, रुड़की विश्वविद्यालय (रुड़की).
- डा० ज्योति प्रसाद जैन—जैन धर्म के प्रकाण्ड विाद्दान; वीर निर्वाण भारती पुरस्कार से सम्मानित; ज्योति निकुंज, चार बाग लखनऊ (उ. प्र.)
- दौलत राम मित्र—आध्यात्मिक वादी लेखक; भानपुरा
- डा० हुकम चन्द भारिल्ल—जैन तत्व दर्शन के विख्यात विवेचक;

रजिस्ट्रार, वीतराग विज्ञान परीक्षा बोर्ड, जयपुर; ए-४ बापू नगर जयपुर (राज०)

- कु० नीलम अग्रवाल—रुड़की विश्वविद्यालय रुड़की में शिक्षारत; शौकिया लेखन
- डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल—सुप्रसिद्द विद्वान; वीर निर्वाण भारती पुरस्कार विजेता; महावीर भवन, सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर (राज०)
- डा० भाग चन्द जैन 'भास्कर'—जैन विद्वान; अध्यक्ष-पाली प्राकृत विभाग, नागपुर विश्व विद्यालय, नागपूर (महा०)
- श्री हजारी लाल 'काका'—सुप्रसिद्द हास्य एवं व्यंग्य कवि; सकरार (झांसी)
- डा० रमेश चन्द जैन—उदमीमान युवक लेखक; वर्धमान कालेज बिजनौर में अध्यापन; बिजनौर (उ० प्र०)
- वैद्य प्रकाश चन्द जी पांड्या—आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न; पेच एरिया, भोपाल गंज, भीलवाड़ा (राज०)
- श्री मोरार जी देसाई—भूतपूर्व उपप्रधान मंत्री; सुप्रसिद्ध चिंतक व विचारक; गाँधी वादी विचार धारा के पोषक; ५ डुप्ले रोड, नई दिल्ली-१
- श्री गणेश प्रसाद जैन—लेखक; वसन्ती कटरा, ठठेरी बाजार, वाराणसी (उ. प्र.)
- उपाध्याय कवि अमर मुनि—जैन दर्शन व शास्त्र के विख्यात व ममस्पर्शी ज्ञाता; एक अप्रतिम व्यक्तित्व; लोहा मण्डी आगरा (स्थायी पता)
- प्रसन्न कुमार बाकलीवाल; सामाजिक कार्यकर्त्ता; इम्फाल (मणिपुर)
- ब्र० हरि लाल जैन—सोनगढ में आध्यात्मिक संत परम पूज्य गुरुदेव श्री कांजी स्वामी के सन्निध्य में आत्म-साधना में लीन; प्रकाण्ड विद्वान; सम्पादक—आत्म धर्म मासिक, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
- श्री भगत राम जैन—आगम पथ के परामर्शक; अखिल भारतीय स्तर के प्रमुख व्यक्ति; अपने प्रकार के एक ही कार्यकर्त्ता; स्पष्ट विचार, सादा जीवन; सैकड़ों संस्थाओं में प्रमुख अस्तित्व; मंत्री—आल इण्डिया भगवान महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव सोसायटी, श्री दिगम्बर जैन लाल मन्दिर, चांदनी चौक, दिल्ली-६

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (रजि०)

१. भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाणन महोत्सव के उपलक्ष्य में हमारा लक्ष्य—

१- श्री महावीर जी क्षेत्र पर—

(क) महावीर स्तूप का निर्माण

(ख) नेत्र चिकित्सालय का निर्माण

(ग) भगवान महावीर के जीवन एवं दर्शन पर आधारित संगमरमर पाषाण पर उत्तीर्ण कलात्मक भाव चित्र

२- साहित्य प्रकाशन—

भगवान महावीर के जीवन, जैन दर्शन, महावीर वाणी पर साहित्य प्रकाशन

३- क्षेत्र द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण साहित्य—

(क) राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची
—पांच भागों में

(ख) Jain Granth Bhandars in Rajasthan
—Dr. K. C. Kasliwal

(ग) राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व
—डा० कस्तूर चंद कासलीवाल

(घ) महाकवि दौलतराम का सन्नीवाल—

(ङ) प्रद्युम्न चरित

(च) जिणदत्त चरित

(छ) जैन शोध और समीक्षा—डा० प्रेमसागर

(ज) वचनदूत (प्रेस में)

❋

प्राप्ति स्थान :

श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र (श्री महावीर जी)
महावीर भवन
—सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर—३ (राज०)
दूरभाष : ७३२०२

सोहनलाल सोगाणी
मंत्री

भगवान महावीर २५०० व
निर्वाण महोत्सव सोसायटी
द्वारा स्वीकृत

शुभ कामनाओं सहित — दूरभाष :—२६५८०८

निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर
प्रचार हेतु विशेष सामग्री के लिए सम्पर्क करें

देहली कलैण्डर मै० कम्पनी

विज्ञापन सामग्री के विशेषज्ञ
१५३०, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Live And Let Live, Love All Serve all—Lord Mahavira
With Best Compliments from :—

Satish Chand Jain & co.

&

Kul Bhushan Kumar Jain

4926, Kucha Ustad Dagh, Chandni Chowk
Delhi-110006

Dealers in :-Handloom Fabrics Specially Export Varieties

Telephones : Office :- 269297 Residence .- 513359

AHINSA IS BLISS—Lord Mahavira

Best Compliments of :

MEENU NOVEL CENTER

6/369, Geeta Colony, Delhi-51

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं वे शीघ्र ही देव-लोकों को प्राप्त कर लेते हैं, चाहे वे वृद्धावस्था में ही प्रव्रजित क्यों न हुए हों।

—तीर्थंकर महावीर

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

—महावीर वाणी

आइये ! हम सब मिलकर वीर प्रभु के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें।